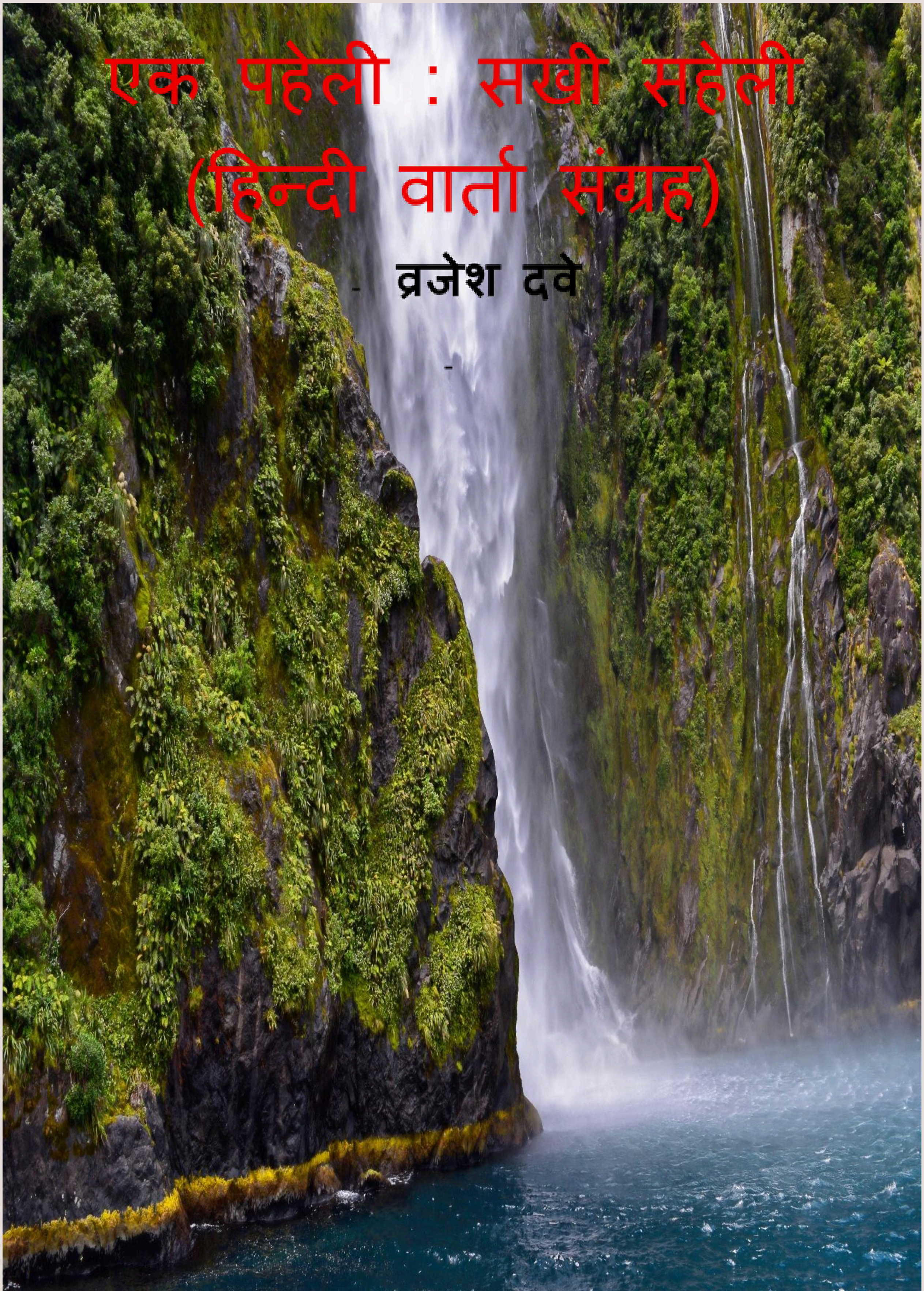
एक पहेली : सखी सहेली
(हिन्दी वार्ता संग्रह)

- व्रजेश दवे

-



एक पहेली : सखी सहेली

(हिन्दी वार्ता संग्रह)

- व्रजेश दवे

समर्पित –

जिसकी उज्ज्वल तीव्र धारा के

आशीर्वाद का सौभाग्य प्राप्त हुआ है

उस हिमाद्रि **तनया**

वसुधारा जल प्रपात

को।

प्रकाशक-

व्रजेश दवे

कर्णावती

गुजरात 380052

[भारत]

+91 94260 41107

+91 95108 45218

dave.vrajesh@gmail.com.

प्रकाशन वर्ष 2026

एक पहेली : सखी सहेली

क्षण क्षण, पग पग जीवन एक पहेली ही तो है। भविष्य के गर्भ में, जीवन अपने भीतर न जाने कितने रहस्यों को छुपाकर रखती है वह कोई नहीं जानता। प्रत्येक श्वास हमारे लिए एक नई पहेली लेकर आता है और पिछले साँसों से सुलझाई गई पहेलियों का अनुभव इस नई पहेली के सामने व्यर्थ हो जाता है। हम उसके उपाय को खोजने के लिए व्याकुल हो जाते हैं। कभी उपाय मिल भी जाता है तो कभी जीवन के अंत तक वह पहेली ही बनी रहती है। किन्तु मनुष्य हार नहीं मानता। प्रयास करता रहता है।

कभी कभी जीवन की कुछ पहेलियाँ हमें कठिन सी लगती है तो कुछ सरल सी। जब हम उन पहेलियों को अपना मित्र, अपनी सखी-सहेली बना लेते हैं तो पहेली के तात्पर्य ही बदल जाते हैं।

ऐसी ही पहेलियों को लेकर प्रस्तुत है आठ वार्ताओं का यह संग्रह- एक पहेली : सखी सहेली। प्रत्येक वार्ता अपने साथ एक अज्ञात पहेली लेकर आती है और अंत में वह सखी सहेली बन जाती है।

आपके प्रतिभावों और प्रतिक्रियाओं की मुझे प्रतीक्षा है। आप मुझसे एक मित्र के रूप में कभी भी, कैसे भी संपर्क कर सकते हैं।

धन्यवाद।

विनीत,

व्रजेश दवे [02/02/2026]

+91 94260 41107

+91 95108 45218

dave.vrajesh@gmail.com.

अनुक्रमणिका -

[1] मैं बोलूँ तो

घर के द्वार पर झूलते ताले को देख बानी वहीं अटक गई। शाला से आज नित्य समय से डेढ़ घंटे पूर्व ही छुट्टी हो गई इस लिए वह समय से पूर्व ही घर लौट आई थी।

बानी के माता पिता दोनों काम पर जाते थे और संध्या समय जब बानी शाला से लौटती तब वे भी घर लौटते थे। किन्तु बानी को आज समय से पूर्व छुट्टी हो गई थी उस बात की उन्हें जानकारी नहीं थी।

घर के द्वार पर लगे ताले को देखकर बानी के छः वर्ष के मस्तिष्क को कुछ भी नहीं सुझा कि क्या करना है। अपना छोटा सा झोला और पानी की बोतल द्वार पर लटकाकर वह चबूतरे पर बैठ गई।

घर के चबूतरे पर वह प्रथम बार नहीं बैठी थी। हाँ, शाला प्रारंभ होने के पश्चात ढलती संध्या के पूर्व के समय में वह आज इस चबूतरे पर प्रथम बार बैठी थी।

बानी जब शाला से लौटती तो संध्या हो जाती। जब वह चबूतरे पर बैठती तब सूरज अस्त हो जाता। और धीरे धीरे रात्रि का तमस चारों ओर प्रसर जाता। तमस के उस पार उसे कुछ नहीं दिखता था, न ही वह देखने का प्रयास करती।

आज, सूरज ढलने को अभी समय शेष था। चारों ओर पर्याप्त प्रकाश था। घर बंद होने के कारण दूर दूर देखने के लिए समय भी पर्याप्त था।

वह चबूतरे पर बैठकर आसपास देखने लगी। वह दूर किसी एक दिशा में देखने लगी। धीरे धीरे उसके कानों पर धीमा धीमा ध्वनि पड़ने लगा। बानी ने ध्वनि की दिशा में आँखों को स्थिर किया। ध्वनि कोलाहल में बदलने लगा। दूर दूर, मार्ग के उस पार कुछ बच्चों के खेलने की ध्वनि उसने सुनी। उसका बाल सहज मन उस तरफ खींचा, तन भी।

चार पाँच मीनट में वह मार्ग के उस पार जहां बच्चे खेल रहे थे वहाँ पहुँच गई। वहाँ लड़कों के साथ लड़कियां भी थीं। एक कोने में खड़ी खड़ी वह सब को खेलते हुए देखने लगी। बानी उनको गिनने लगी। पाँच लड़के और चार लड़कियां मिलकर कुल नौ बच्चे थे।

वे सब पेड़ पर चड़ते थे, ऊपर चड़ने के पश्चात नीचे कूद जाते थे। एक दूजे को पकड़ने दौड़ जाते थे। बानी सोचने लगी ‘यह खेल तो ... पिताजी ने कहा था कि वे जब नन्हें थे तब वे ऐसे खेल खेला करते थे। क्या नाम कहा था पिताजी ने ... इस खेल का? आंबली ....जाम्बली? नहीं, नहीं। आंबली पिपली। हाँ। आंबली पिपली। यही कहा था। कितना सुंदर नाम है! कितना अच्छा खेल है यह?

दौड़कर पेड़ पर चड जाने का। डालियों पर चलते जाना, एक डाली पकड़कर लटक जाना, और अंत में नीचे कूद जाना। कितना आनंद आता होगा?

मैं भी चड जाऊं उस पेड़ पर, और ऊपर से कूद जाऊं नीचे। बड़ा आनंद आएगा।‘

वह पेड़ के समीप जाने लगी। उसका पूरा ध्यान पेड़ पर, पेड़ की डालियों पर ही था। बाकी सब उसकी दृष्टि से लुप्त हो गया था। वह पेड़ की तरफ चल रही थी। पेड़ अब केवल चार पाँच चरण ही दूर था। तभी पेड़ से लटकी हुई एक लड़की नीचे गिर पड़ी। बानी को भी गिरा गई। दोनों धूल में लेटी थीं।

दोनों ने एक दूसरे को देखा। एक क्षण के लिए दोनों चौंकी, दूसरे ही क्षण दोनों हंस पड़ी। एक दूसरे का हाथ पकड़ दोनों खड़ी हो गई। धूल को झटक दिया।

बानी ने प्रथम पेड़ के कांड को, पश्चात शाखा को और अंत में उस लड़की को देखा। उसने बानी को पूछा, “तू खेलेगी हमारे साथ?”

बानी कुछ कहे इससे पूर्व बाकी के लड़के लड़कियाँ भी वहाँ आ गए। सभी एक साथ पूछने लगे, “तू खेलेगी हमारे साथ?”

बानी ने संकेत से ‘हाँ’ कहा। अब पाँच लड़के और पाँच लड़कियां खेल रहे थे - आंबली पिपली। वे खेलते रहे, आनंद लेते रहे। प्रसन्न होते रहे। अंतत: थककर पेड़ के नीचे बैठ गए।

“तेरा नाम क्या है?” उनमें से किसी ने बानी से पूछा। बानी ने उत्तर नहीं दिया।

“तू कहाँ रहती है?” दूसरे ने पूछा।

बानी मौन।

“तू कौन सी शाला में पढती है?”

बानी मौन।

“इसके कपड़े तो देखो। किसी अंग्रेजी शाला में पढती होगी। देखो देखो, यहाँ उस शाला का नाम भी लिखा है। किन्तु, मुझे तो अंग्रेजी पढ़ना नहीं आता।” चौथे ने कहा।

बानी मौन।

“अंग्रेजी शाला में जो पढती है तो उसे हिन्दी कहाँ आती होगी?” पाँचवे ने कहा।

बानी मौन।

“नहीं। इसे हिन्दी तो आती ही है। हमने उसे हिन्दी में ही पूछा था की तू खेलेगी हमारे साथ?” छठा बोला।

बानी मौन।

“और उसने संकेत से कैसे ‘हाँ’ कहा था।” सातवें ने स्मरण कराया।

बानी मौन।

“इसे हिन्दी आती है तो उत्तर क्यों नहीं देती? बोलती क्यूँ नहीं?” आठवे ने संशय जगाया।

बानी मौन।

“वह गूंगी होगी। उसके मुंह में जीभ ही नहीं होगी।” नवें ने निर्णय सुना दिया।

बानी मौन।

“तू गूंगी है?” सभी ने एक साथ पूछा।

बानी अभी भी मौन।

बानी मौन अवश्य थी किन्तु उसका मन मौन नहीं था। उसे खूब बोलना था। सभी प्रश्नों के उत्तर देने थे। तथापि वह मौन ही रही। पिछले नौ दिनों से उसने जो मौन बना रखा था उसी मौन को बानी ने बनाये रखा। ऊसका मन पिछले सत्रह अठारह दिनों की घटनाओं के पास दौड़ गया।

अठारह दिन पूर्व उसने अंग्रेजी शाला के प्रथम वर्ष में प्रवेश लिया था। बड़े उत्साह से वह शाला में गई थी। पूरा दिन मस्ती में व्यतीत हुआ था। प्रथम दिन ही उसने अनेक नए मित्र बना लिए थे। नई शाला में वह प्रसन्न थी।

दूसरे दिन जागते ही वह शाला जाने के लिए उत्सुक थी। उसकी अधीरता उसकी चाल मे स्वत: छलकती थी। जिसे देखकर माता पिता दोनों हर्षित थे। उसकी प्रसन्नता भी छलक रही थी।

“हमारी बानी अंग्रेजी शाला में पढ़ने लगी है। उसे यह शाला पसंद आ गई प्रतीत होती है।” बानी की माँ ने कहा।

“हमारा सपना पूरा होगा। बानी अंग्रेजी शाला में पढ़कर बड़ी अधिकारी बनेगी। हमने भले ही हिन्दी शाला में पढ़ाई की है किन्तु बानी अंग्रेजी पढ़कर अच्छी पढ़ाई करेगी और समाज में हमारा नाम उज्ज्वल करेगी।” बानी के पिता ने भी अपना सुर प्रकट किया।

बानी शाला पहुँच गई। दिन भर पढ़ती रही। नए मित्रों के साथ प्रसन्न होती रही। शाला समाप्ति के पंद्रह मिनट पूर्व ही टीचर ने बानी के हाथ में एक चिट्ठी रख दी।

“गिव ईट टु योर पापा।”

बानी को ‘पापा’ इतना ही समज आया। उसने चिट्ठी लेकर झोले में रख ली। उसे इतनी समज आ गई कि यह चिट्ठी पिताजी के लिए है।

शाला का समय समाप्त हुआ। घर जाते मार्ग में बानी ने चिट्ठी खोली और पढ़ने का प्रयास किया। किन्तु वह तो अंग्रेजी में थी। इस अंग्रेजी शाला में आए उसे अभी दो दिन ही हुए थे। वह चिट्ठी पढ़ न सकी। चिट्ठी बंद कर झोले में रख दी।

‘आज मैंने कई नई बातें शिखी है इस लिए टीचर ने मेरी अच्छी बातें लिखी होगी इस चिट्ठी में।’

बानी ने कल्पना की।

पिताजी जब घर लौटे तो बानी उसके पास दौड़ गई और उनके हाथ में टीचर वाली चिट्ठी रख दी। पिताजी उसे पढ़ने लगे।

दूर खड़ी बानी पिताजी को पढ़ने लगी। मुख के भावों के माध्यम से अंग्रेजी में लिखी चिट्ठी के शब्दों को उकेलने का प्रयास करती रही। किन्तु उसे कुछ भी समज नहीं आया।

पढ़कर पिताजी ने चिट्ठी बंद कर दी। उनके मुख पर एक सरल स्मित था। बानी पिताजी के पास दौड़ गई। पिताजी ने उसके माथे पर स्नेह से हाथ फेरा। बानी को अच्छा लगा। उसने पिताजी को स्मित दिया। पिता ने भी स्मित से प्रतिभाव दिया। प्रसन्न होती हुई बानी खेलने चली गई।

दूसरे दिन पिताजी शाला में आए। बानी उसके समीप दौड़ी आई। पिता ने माथे पर हाथ रखते हुए कहा, “अपने क्लास में जाओ बेटा।” बानी नाचती कूदती चली गई अपनी कक्षा में।

उस दिन भी टीचर ने पुन: एक चिट्ठी दी। बानी उसे भी पढ़ न सकी। पुन: उसने उसे पिताजी को दी। पिताजी ने बिना पढे ही बानी को स्नेह करते हुए माथे पर हाथ रखा। बानी प्रसन्न होती हुई खेलने चली गई।

अविरत नौ दिनों तक यही घटना क्रम होता रहा। टीचर चिट्ठी देते, बानी उसे पिताजी को देती, वे उसे बिना पढे ही बाजू पर रख देते, बानी के माथे पर हाथ फेरते, स्मित देते, बानी हँसती हँसती खेलने चली जाती।

दसवें दिन भी टीचर ने बानी को चिट्ठी दी। उसने टीचर के सामने देखा।

‘सारे वर्ग में टीचर मुझ अकेली को ही चिट्ठी क्यूँ देती है? किसी दूसरे को क्यूँ नहीं देती? क्या है इस चिट्ठी में? आज इस चिट्ठी की बात जाननी ही है। पिताजी को ही पूछ लूँगी कि क्या है इस चिट्ठी में। टीचर मुझे ही क्यूँ रोज चिट्ठी देती है।’

घर जाती हुई बस में वह बैठ गई। बस उसे घर के समीप उतार कर चली गई। वहीं कॉलेज की तीन युवतियाँ खड़ी थीं।

‘इन दीदीयों को तो अंग्रेजी आती होगी। चल उन्हें यह चिट्ठी पढ़ने को देती हूं और पूछ लेती हूँ की इसमें क्या लिखा है।‘

बानी उनके पास दौड़ गई।

“दीदी, दीदी। मेरी टीचर मुझे रोज एक ऐसी चिट्ठी देती है। इस चिट्ठी में क्या लिखा है? मुझे पढ़कर बताओ न। प्लीज दीदी।”

एक युवति ने चिट्ठी ले ली। पढ़ने लगी। बानी और दो युवतियाँ उस युवती के हावभाव को देखती रही। तीनों युवतियों ने एक के पश्चात एक चिट्ठी पढ़ी।

“दीदी, कहो न। क्या लिखा है?” बानी अधीरता से पूछने लगी। बानी को क्या उत्तर दें इस दुविधा में पड़ी युवतियाँ मौन ही खड़ी रही। बानी ने उन्हें पुन: विनती की, “दीदी, प्लीज।”

“तू बता दे।” एक ने दूसरी से कहा।

“तू ही बता दे। मैं नहीं बता सकूँगी।” दूसरी ने कहा।

तीसरी ने चिट्ठी बानी के हाथ में रख दी और चलने लगी। बाकी दोनों भी चलने लगी। निराश बानी उन्हें जाते देखती रही।

दूर खड़ा एक युवक यह सब देख रहा था। वह बानी के पास आया।

“मुझे दे यह चिट्ठी। मैं तुझे..।”

बानी ने युवक को चिट्ठी दे दी। उसने उसे पढ़ा। पढकर बानी को देखने लगा। बानी को कुछ भी समज नहीं आया। वह भी उसे देखती रही।

कुछ क्षण व्यतीत होने पर युवक ने कहा, “बेटा, तू जिस शाला में पढ़ती है वहाँ के नियम को तुम जानती हो?

“कैसा नियम?”

“यही कि सभी स्टूडेंट को केवल अंग्रेजी में ही बातें करनी है। अंग्रेजी में ही बोलना है। कोई अन्य किसी भाषा में बात नहीं करेगा। तू वहाँ हिन्दी में बात करती है क्या?”

“हाँ। मुझे अंग्रेजी बोलना नहीं आता तो?”

“तो जो अंग्रेजी नहीं बोलते, अपनी भाषा में बोलते हैं उन्हें दंड दिया जाता है।”

“यह दंड क्या होता है?”

“दंड का अर्थ है सजा।”

“किन्तु मुझे तो कभी अंगूठे पकड़ने को नहीं कहा। न ही कभी क्लास से बाहर निकाला या कभी पीछे वाली बेंच पर खड़ी रखा। मेरी पुरानी शाला में सब को सजा होती थी।” बानी के मुख पर विस्मय था।

“हाँ। ऐसी सजा हिन्दी शालाओं में ही होती है।”

“तो अंग्रेजी शाला में चिट्ठी देकर सजा होती है?” बानी की बात सुनकर युवक हंस पडा।

“कहो न, अंग्रेजी शाला में सजा ऐसे होती है क्या?”

“अंग्रेजी शाला में ऐसी सजा नहीं होती। वहाँ स्टूडेंट को नहीं माता पिता को सजा होती है।”

“?”

“बालक की भूल पर माता पिता को ढेर सारे रुपये भरने पड़ते हैं।” युवक ने कहा।

“तो क्या इस चिट्ठी में रूपीए मांगे हैं?” बानी ने बात समजने का प्रयास किया।

“नहीं। तू जब पहेली बार हिन्दी में बोली थी तब तुम्हारे पिता ने एक साथ महीने भर के दंड के रूपीए भर दिए हैं।”

“तो रोज रोज क्यों मेरी टीचर मुझे चिट्ठी देती है?”

“टीचर तो तुम्हारे पिता को रोज के दंड का हिसाब लिखकर देती है इस चिट्ठी में।”

“मेरे पिताजी को रोज रोज दंड भरना पड़ता है?”

“हाँ, बेटा।”

“मेरे कारण ही पिताजी को दंड भरना पड रहा है न?” बानी गंभीर हो गई।

“यही बात है बेटा।”

युवक बानी के हाथ में चिट्ठी छोड़कर चला गया।

बानी मार्ग के कोने में खड़ी सोचने लगी।

‘मैं हिन्दी में बोलूँ तो दंड होता है। तभी तो टीचर मुझे रोज रोज चिट्ठी देती है। किन्तु पिताजी तो कभी मुझे कुछ कहते ही नहीं। गुस्सा भी नहीं करते। उल्टा मुझे स्नेह करते हैं।’

‘किन्तु पिताजी हँसते हुए भी दंड तो भरते ही है न? मेरे कारण ही दंड हो रहा है।’

‘तो शाला में हिन्दी बोलना बंद कर दूँ?’

‘किन्तु मुझे अंग्रेजी बोलना नहीं आता है।’

‘तब तो पिताजी को दंड भरते रहना होगा।’

‘नहीं। अब मैं पिताजी को दंड नहीं भरने दूँगी।’

‘तो तू क्या करेगी?’

‘मैं कुछ नहीं करूंगी। मैं बोलूँगी ही नहीं। मैं चुप ही रहूँगी।’

बानी ने हाथ में पड़ी चिट्ठी को देखा। क्रोध से उसके टुकड़े टुकड़े कर डाले। टुकड़ों को हवा में उछाल दिया। और मन ही मन बोली, ‘अब मैं कहीं भी कुछ भी नहीं बोलूँगी। कुछ भी नहीं।’

उस दिन से बानी गूंगी हो गई। ना तो घर में कुछ बोलती ना ही शाला में। उस दिन से टीचर ने चिट्ठी देना भी बंद कर दिया।

सब कुछ चलता रहा, क्रम से। बानी का मौन भी।

“तू गूंगी है?”

“तू गूंगी है?”

“तू गूंगी है?”

साथ खेल रहे बच्चों के यह शब्द बानी के कानों पर गूंजने लगे। आँखें बंद कर उसने कान पर हाथ रख दिए। सभी ध्वनि शांत हो गए।

बानी ने जब आँखें खोली तो देखा कि सभी उसे अकेली छोड़कर दूर जा रहे थे।

बानी ने अपना मौन भंग किया।

“रुको, रुक जाओ सभी। मैं गूंगी नहीं हूँ। मुझे हिन्दी बोलना आता है। मुझे हिन्दी बोलना है। मुझे मेरी भाषा बोलनी है। मुझे बोलना है। किन्तु वह दंड कौन चुकाएगा? क्यूँ चुकाएगा....?”

बानी चीखती रही। उसकी चीख व्योम में विलीन हो गई।

जून 2018

भुज।

[2] ठगा ही जाएगा

मैं भारत के पूर्वी नगर कछुबेड़िया से गंगासागर जाने के लिए रिक्शा ढूंढ रहा था। यात्री अधिक नहीं थे। रिक्शा भी अल्प थी। तभी मैंने एक रिक्शावाले को देखा। मैंने उससे पूछा, “गंगासागर चलोगे क्या, भैया?”

रीक्षावाला बोला, “क्या आप बांग्लादेश चलोगे?”

मैं चौंका, “उपहास क्यूँ कर रहे हो, भैया?”

“मैं उपहास नहीं कर रहा।”

“तो बांग्लादेश क्यों?”

“वहाँ के हिंदुओं का साथ देने के लिए।”

“क्यों? क्या हो गया है बांग्लादेश के हिंदुओं को?”

“आपको कुछ भी जानकारी नहीं है या?” उसने प्रश्न मेरे पर छोड़ दिया।

“थोड़ी थोड़ी जानकारी तो है।”

“तो पूरी जानकारी क्यों नहीं है?”

"वह तो दूसरा देश है, हमारा क्या लेना-देना? हमें अपनी शांति देखनी चाहिए।”

“हिन्दू हो ना आप? आपको क्या? जब तक आपके वस्त्र जलते नहीं, आग होने को आप स्वीकार नहीं करोगे। तब तक निश्चिंत हो सोते रहना हमारा स्वभाव है। ऐसे ही कब तक सोते रहोगे?”

“हं वह तो..।”

“चलिए, रिक्शा में बैठिए। गंगासागर जाइए, पुण्य अर्जित करिए और सो जाइए लंबी नींद।”

“तुम्हारी समस्या क्या है? कुछ विस्तार से कहोगे?”

“मेरी समस्या नहीं, यह मेरी पीड़ा है। क्या मेरी पीड़ा आपको स्पर्श करेगी?”

“क्यों नहीं करेगी? कुछ खुलकर बताओ।”

“आपका वहाँ कौन है जो आपको पीड़ा होगी?”

“तुम्हारा वहाँ कोई है क्या?”

“क्या किसी पीड़ा के होने के लिए वहाँ किसी मेरे अपने का होना आवश्यक है? मेरा वहाँ कोई नहीं है। किन्तु वहाँ जो जो हैं सभी मेरे हैं, हमारे हिन्दू हैं। क्या इतना पर्याप्त नहीं है?”

मैं कुछ विचार में मौन ही रहा।
“क्या विचार कर रहे हो?”
“तुम्हारी बात पर ही विचार कर रहा हूँ। वहाँ का प्रत्येक हिन्दू अपना है। यही कहा था ना? बहुत बड़ी बात कह दी।”
“हम बातें ही करते हैं बड़ी। हम हिन्दू कुछ नहीं करते, कुछ नहीं कर सकते, सिवा बातों के।”
“ऐसा क्यों कह रहे हो?”
“पेलेस्टाइन और गाझा का नाम सुना है आपने?”
“हाँ। वहाँ इझरायल ने बड़ी तबाही मचा रखी है। हजारों लोगों को बेघर कर दिया है। कितनी यातनाएं भोग रहे हैं वहाँ के लोग।”
“पेलेस्टाइन यहाँ से कितना दूर होगा?”
“हजारों किलोमीटर।”
“और ढाका?”
मैं उसके शब्दों का मर्म जान गया तथापि मौन रहा।
“हजारों किलोमीटर दूर जहां आपका कोई नहीं है उसके विषय में आपको बड़ी पीड़ा हो रही है? आप निश्चित ही बुद्धिजीवी, सेक्युलर हिन्दू होंगे।”
वह मुझे पहचान चुका था। और मुझे उसी की रिक्शा से गंगासागर तक जाना था। अत: मैं विवश होकर मौन ही रहा।
“इतिहास साक्षी है। जब जब बंगाल पर विपदा आई है, हिन्दू सोया ही रहा है। और हर बार बंगाल का हिन्दू ठगा गया है।” एक गहरे निश्वास के साथ बोला, “इस बार भी।“ वह बोलत्ते बोलते रुक गया।
“कैसे ठगा गया है अब तक?”
वह उत्तर दे उससे पूर्व एक वृद्ध व्यक्ति मेरी रिक्शा में प्रवेश कर गया। मैंने उसे देखा। उसके कपड़े कहीं कहीं से जीर्ण हो चुके थे। मुख पर कुछ घाव के चिहन थे। वह किसी बात पर व्यथित था। मुझे देखकर उसने हंसने का व्यर्थ प्रयास किया। उसके मुख पर पीड़ा के भाव उभर आए।
वृद्ध ने कहा, “सुनना चाहो तो मैं बताता हूँ। सुनोगे?”
“आप?” आप कौन हैं?”
उसने अपनी मैली हथेली खोल दी। अपनी हस्तरेखाओं को देखने लगा। अनायास मैंने भी उन रेखाओं को देख लिया। वे टूटी फूटी थी, जैसे कोई भवन के भग्न अवशेष हो।

“बता दूँ मैं कौन हूँ?”
“हाँ, बता दो।”
“मैं बंगाल का इतिहास हूँ। मेरे मुख को देखो। मेरे इन घावों को देखो। ये घाव स्वयं सारी बातें कह रहे हैं किन्तु कोई सुनता कहाँ है?”
“मैं सुनूँगा। कहो, कहो।”
रिक्शावाले ने रिक्शा चालू कर दी। हम गंगासागर के मार्ग पर बढ़ गए।
वृद्ध बोलने लगा, “देश विभाजन से दो प्रजाओं ने सबसे अधिक दु:ख सहे हैं। एक पंजाबी और दूसरे बंगाली। विशेष रूप से बंगाली हिन्दू। स्वतंत्रता के यज्ञ में भी मराठाओं के साथ साथ पंजाबी और बंगाली प्रजा ने शस्त्र उठाए थे। इन्होंने ही अपने बच्चों का बलिदान दिया। तथापि सबसे दुर्भाग्य रहा बंगालियों का। इनके भाग्य में हर बार छलना आई। उसे हर बार ठगा गया, विशेष रूप से बंगाली हिन्दूओं को।”
मैं उसे ध्यान से देखता रहा, सुनता रहा।
वह आगे बोलने लगा, “बात है 1905 की। बंगाल की धरती को दो हिस्सों में चीर दिया गया। 20 जुलाई 1905।
तत्कालीन ब्रिटिश वाईसरॉय लॉर्ड कर्जन ने बंगाल के दो टुकड़े कर दिए- एक पूर्व बंगाल जो मुस्लिम बहुल क्षेत्र था जिसे हम आज बांग्लादेश के नाम से जानते हैं; दूसरा पश्चिम बंगाल, जहां आज इसी समय तुम खड़े हो।”
मैंने धरती पर दृष्टि डाली, बस उसे देखता रहा, सिर झुका रहा।
“धर्म के नाम पर भारत का यह प्रथम विभाजन था। किन्तु बंगाल ने प्रशासन के उस निर्णय का उग्र विरोध किया जिसके फल स्वरूप 1911 में छ: वर्षों के पश्चात किंग ज्योर्ज पंचम द्वारा बंगाल विभाजन को निरस्त कर दिया गया।
बंगाल के उस जोश को शत शत नमन जिससे बंगाल का एकत्रीकरण हुआ और देश का प्रथम विभाजन विफल हो गया।”
उसके मुख पर कुछ लालिमा दिखाई पड़ी। किन्तु क्षण में ही वह विलुप्त हो गई।
“किन्तु, बंगाल में हिन्दू और मुस्लिम का विभाजन करने में ब्रिटिश सरकार सफल रही। 1909 में धर्म आधारित हिन्दू और मुस्लिम के अलग अलग चुनाव हुए। इसी ने भविष्य के देश विभाजन की नींव रखी।” वह मुड़ा। अपने झोले से उसने कुछ कागजों को निकाला जो आधे जले हुए थे। वह मेरे मुख के भावों को देखने लगा।
“यह तो पुरानी बात है, इसका अभी क्या?” मैंने उसकी बात को काटने का प्रयास किया।

“इसे पुरानी बात नहीं कहते, इतिहास कहते हैं। इतिहास से जो कुछ भी नहीं सीखता वही ऐसे प्रश्न करता है कि - इसका अभी क्या? हिन्दू हो ना तुम? इतिहास से सीखना तुम्हारा चरित्र ही नहीं है।” वह मौन हो गया।

“हाँ, हमने अपने इतिहास से कुछ नहीं सीखा।”

“तो आज भी नहीं सीखोगे क्या?”

“कोई और बात बताओ।” मैंने विषय बदलना चाहा।

“तो सुनो दूसरी घटना बताता हूँ।

10 अक्टूबर 1946.

कोजागरी लक्ष्मी पूजन कर रहे हिंदुओं पर मुस्लिमों द्वारा आक्रमण होता है और रक्त रंजीत नोआखली हत्या कांड का प्रारंभ होता है। 300 से अधिक हिंदुओं का संहार होता है। हिन्दू स्त्रीयों के चरित्र भंग किए जाते हैं।

उस समय सत्ता की तरफ सहायता की आश लगाता है हिन्दू ! किन्तु ठगा जाता है हिन्दू। महात्मा ने भी हिंदुओं के घावों को भरने के बदले उसे अधिक पीड़ा में धकेल दिया।

तभी. तभी एक वीर हिन्दू जागा-

गोपालचन्द्र मुखर्जी उर्फ गोपाल पाठा। उसने शस्त्र उठाए, विधर्मियों का प्रतिकार किया, हिंदुओं में आत्मविश्वास जगाया तब जाकर वह तूफान शांत हूआ।”

वह थोड़ा हांफने लगा। एक गहरी सांस लेते हुए उसने झोली से एक डिब्बा निकाला।

“क्या है इसमें?” मैंने उत्सुकता प्रकट की। मुझे था कि वह कुछ खाने की वस्तु निकालेगा, उसे खाएगा, पश्चात पानी पिएगा। मेरा अनुमान मिथ्या था। उसने डिब्बा खोला। पूरा डिब्बा राख से भरा था।

मेरे मुख पर विस्मय आ बैठा। ऊसने उसे देख लिया।

“यह नोआखली की राख है। मारे गए हिंदुओं की अस्थियाँ हैं।”

“अभी तक इसे संभाल रखा है?”

“मैं इतिहास हूं। समय की राख को मैं अपने भीतर संभालकर रखता हूँ। यह मेरा स्वभाव है। मैं इसे कभी नहीं छोड़ सकता।”

“अस्थियाँ तो गंगा में विसर्जित की जाती है। तभी तो उन आत्माओं को मुक्ति मिलेगी। इसे मुझे दे दीजिए। मैं गंगासागर में इसे विसर्जित कर दूंगा।”

उसने मेरी तरफ तीव्र दृष्टि से देखा। उसकी आँखों में ज्वालाएं थी।

“मुक्ति? गंगा में विसर्जन से नहीं होगी इनकी मुक्ति। जब तक इनकी यातनाओं का प्रतिशोध नहीं लिया जाता, इन्हें मुक्ति नहीं मिल सकती।”

मैं तटस्थ भाव से उसे सुनता रहा। उसने मेरे मुख भावों से जान लिया कि उसकी बातों का मुझ पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

“प्रतीत होता है कि तुम अभी पूरे जागे नहीं हो, तुम्हें मैं और भी इतिहास सुनाता हूँ। हो सकता है उसे सुनकर तुम कुछ जाग जाओ। सुनो।”

उसने स्वयं को समय के एक बिन्दु पर स्थिर कर दिया।

“15 अगस्त 1947।

देश का विभाजन, बंगाल का भी विभाजन। पूर्व बंगाल का भाग भारत से छूट गया। बन गया पूर्व पाकिस्तान।

देश विभाजन से पंजाबी और बंगाली सबसे अधिक प्रभावित हुए। लाखों पंजाबी और बंगाली लाशें बनकर ही भारत में प्रवेश कर सके।

पंजाब का टुकड़ा तो पाकिस्तान में चला गया किन्तु बंगाल का टुकड़ा भारत की छाती पर पूर्व पाकिस्तान बनकर बंगाल के हिंदुओं को क्षण प्रतिक्षण अपमानित करता रहा।

पूर्व पाकिस्तान के हिंदुओं पर अत्याचार होने लगे। नरसंहार होता रहा। भारत से सहायता की आश लगाता बंगाली हिन्दू पुन: ठगा गया। उसे कोई सहायता नहीं मिली। वे उस नरक में यातनाएं सहता रहा।”

वह रुका। मेरे मुख को देखने लगा। मेरे मुख पर क्रोध के भाव स्पष्ट उभर आए थे।

“मुझ पर क्रोध आ रहा है न?”

“जी ..., नहीं..जी...।”

“तो आगे सुनाऊँ?”

वैसे तो मैं उसकी बातों से ऊब चुका था किन्तु मार्ग अभी बाकी था। तो मैंने सम्मति दी। मैं चाहता था कि उसकी बातों से कुछ मुद्दे निकालकर उसे अपने नेरेटिव से परास्त करूँ। मैं ऐसे ही किसी मुद्दे की प्रतीक्षा में उसको सुनता रहा।

“1971, दिसंबर का महिना।

पाकिस्तान के विरुद्ध पूर्व पाकिस्तान में आंदोलन प्रारंभ होता है। जिसके कारण जब स्थिति अत्यंत गंभीर हो जाती है तो भारत सशस्त्र हस्तक्षेप करता है। पाकिस्तान की सेना को परास्त कर पूर्व पाकिस्तान अर्थात पूर्व बंगाल को भारतीय सेना जीत लेती है।

हिन्दू बंगाली प्रसन्न होते हैं। उन्हें आशा होती है की अब वह पुन: अपने देश भारत का हिस्सा बन जाएंगे। शांति और सुख लौट आएंगे। सारी समस्या, सारी पीड़ा, सारी यातना आदि का सुखद अंत होगा।

किन्तु,

पुन: एक बार बंगाल का हिन्दू ठगा गया। पूर्व बंगाल को भारत ने उसके हाल पर छोड़ दिया। उसे भारत में विलीन करने का साहस न कर सका भारत का राजकीय नेतृत्व।

और? एक नए देश ने जन्म लिया- बांग्लादेश।

बांग्ला हिंदुओं की सारी आशाएं, अपेक्षाएं धूम्रसेर बनकर हवा में विलीन हो गईं। उनके लीये कुछ नहीं बदला, कुछ नहीं।"

"वह तो हमारी परंपरा का ही निर्वाह था। तुम तो इतिहास हो, तुम जानते ही हो कि आपके भगवान राम ने लंका विजय के पश्चात लंका विभीषण को सौंप दी थी। भारत ने भी राम के आदर्श को ही अपनाया था।" मुझे वह मुद्दा मिल गया था जिसकी मुझे प्रतीक्षा थी। मैं प्रसन्न था, मैंने उसे परास्त कर दिया था। मेरा सेक्युलर पक्ष जीत रहा था।

"तूम झूठ भी ठीक से नहीं बोल सकते हो।"

"वह कैसे? मैंने कहाँ झूठ कहा। यही तो आपकी रामायण कहती है।"

"तथ्यों को तोड़ मरोड़कर रखना आपका स्वभाव है, मैं जानता हूँ। किन्तु सत्य यह है कि भगवान श्री राम ने जो प्रदेश जीता था वह रामजी का नहीं था, रावण का था। और विभीषण रावण का ही बंधु था।

पूर्वी बंगाल अपना ही था, भारत का ही था। अपना देश जीतकर किसी और को दे देना भगवान श्री राम का आदर्श नहीं है।

दूसरी बात, भगवान श्री राम को केवल राम कहना आप जैसे ही लोग कर सकते हैं। श्रीराम कहना चाहिए आपको।"

मैं जिसे मेरी विजय मानता था वही मेरी पराजय बन गई। मैंने पैंतरा बदलते हुए कहा, "आप भी कहाँ रामायण के युग में चले गए? पुरानी बातों को छोड़ो, आज की कोई बात करते है न?"

"रामायण की बात मैंने तो नहीं छेड़ी थी।" उसने तीक्ष्ण दृष्टि से मेरी तरफ देखा। उनके नयनों के अग्न्यास्त्र से मैं छलनी हो गया।

"चलो आज की बात बताता हूँ।

वर्ष 2024, 5 अगस्त।

तत्कालीन बांग्लादेशी प्रधानमंत्री शेख हसीना का तख्ता पलट होता है। वह देश छोड़कर भाग जाती है। और बांग्लादेस के लघुमती हिंदुओं पर अत्याचार प्रारंभ होता है। उसे लूटा जा रहा है, मारा जा रहा है। स्त्रीयों पर बलात्कार हो रहे हैं। मंदिरों में स्थित भगवान की मूर्तीयां तोडी जा रही है।

और तो और, प्रत्येक भूखे को दोनों समय पर्याप्त भोजन कराकर पेट भर रहे इस्कॉन के स्वामी चिन्मय कृष्ण दास को अपराधी बनाकर पकड़ लिया गया है। हिंदुओं का अन्न खाकर हिंदुओं को ही मार रही है बांग्लादेश की बहुमत जनता। हिंदुओं को नष्ट करने पर तुली है बांग्लादेश की बहुमत प्रजा। और उसे समर्थन दे रही है बांग्लादेश की सरकार। हिन्दू नि:सहाय है।

क्या तुम्हें टूटे हुए मंदिरों के घंटनाद नहीं सुनाई देते? फूटे हुए शंखों की ध्वनि नहीं सुनाई देती? महिलाओं पर हो रहे बलात्कार की चीखें नहीं सुनाई दे रही? कत्ल हो रहे हिंदुओं के आक्रंद को तुम सुन नहीं सकते? इतने बहरे हो गए हो क्या?

खेर, जाने दो इन बातों को। तुम्हें यह सब सुनाई नहीं देगा क्यूँ कि तुम सेक्युलर हो, बुद्धिजीवी हो। क्या तुम कलाकार भी हो?"

कलाकार शब्द सुनते ही मैं चौंक गया। यह इतिहास तो सब कुछ जानता है मेरे विषय में भी।

"हाँ, मैं कलाकार हूँ। मैं लेखक हूँ। किताबें लिखता हूँ।"

"कलाकार तो संवेदना प्रकट करते हैं।"

"मैंने प्रकट की थी, पेलेस्टाइन की दुर्दशा पर।"

"और बांग्लादेश पर? हिंदुओं की बात आती है तो आप जैसों की संवेदनाएं शून्य हो जाती है। कितनी मर्यादित है आपकी संवेदना? कितनी सिलेक्टिव है आपकी संवेदना? तब तो ऐसी बातों पर तुम्हारा बहरा होना स्वाभाविक है। कितने दंभी हो तुम!"

"क्यूँ?"

"एक तरफ तुम हिन्दू हो, गंगासागर की यात्रा भी कर रहे हो। सेक्युलर, बुद्धिजीवी और कलाकार भी हो। नास्तिक होकर यह यात्रा क्यूँ कर रहे हो?"

मेरे चरित्र पर ये शब्द वज्राघात से थे। मेरा दोगलापन उसने पकड़ लिया था। मैं निरुत्तर ही रहा।

"आज भी बांग्ला हिन्दू भारत की तरफ आश लगाए बैठा है,

किन्तु भारत तो है निरपेक्ष, निष्क्रिय। भारत सो रहा है, भारतीय हिन्दू सो रहा है। क्यों कि, हमारा वहाँ कौन है जो हम गहरी नींद से जाग जाएँ?

बंगाल के हिंदुओं ने इतिहास से इतना तो सिख ही लिया है कि संकट के समय में कोई उनके साथ खड़ा नहीं रहता। ना भारत, न ही भारत का हिन्दू। अपनी लड़ाई स्वयं ही लडनी पड़ती है।

वे लड़ रहे हैं। अकेले। यदि किसी से भी आशा रखी जाएगी तो पुन: ठगे जाएंगे। वे लड़ रहे हैं, हम सो रहे हैं।

हम में से कोई उसके साथ नहीं लड़ रहा। न मैं, न तुम, न और कोई। हम सब सो रहे हैं, हमें क्या?

क्या तुम वाकई सो रहे हो, या सोने का नाटक कर रहे हो? याद रखना, अगर पड़ोसी का घर जल रहा है, तो आग की लपटें तुम्हारी खिड़की तक पहुँचने में देर नहीं लगाएंगी।”

“श्रीमान, लो आ गया आपका गंगासागर।” रिक्शावाले ने कहा।

उसने रिक्षा रोक दी, हमारी बातचीत भी।

वृद्ध इतिहास रिक्शा से उतरा। पीछे मैं भी। रिक्शा का किराया दिया और चलने लगा।

तभी वह बोला, “संकट के समय में भी सब व्यस्त हैं अपने अपने पुण्य अर्जित करने में, नास्तिक भी।”

सहसा मेरे चरण रुक गए। क्षण भर विचारकर मैं वहाँ से चल दिया अपने पुण्य अर्जन की दिशा में।

“इस बार भी ठगा ही जाएगा।” मेरे कानों में रिक्शावाले के शब्द गूँजते रहे।

सम्पन्न

जनवरी 2024.

[3] कारण नहीं है

“मुझे प्रतीत हो रहा है कि कदाचित हम प्रेम में हैं।” ढलती संध्या के समय समुद्र तट के कॅफे के टेबल पर बैठे बैठे दीप्ति ने कहा।

समुद्र से भी अधिक गहन ऐसी दीप्ति की आँखों में डूबे निश ने दीप्ति के शब्द सुने। वह चौंक गया। दीप्ति के शब्द उसे विचलित कर गए।

‘मुझे प्रतीत हो रहा है।’ क्या तात्पर्य होता होगा ऐसे शब्दों से? प्रतीत होने में कहीं भी होनापन होता होगा? कभी नहीं। प्रतीत होना और होना! दोनों पूर्ण रूप से विरोधी अवस्था। एक दूसरे की शत्रु। एक झँखना है तो दूसरी प्रत्यक्ष आ खड़ी होती है।

और एक शब्द ‘कदाचित’ भी बोली है दीप्ति।

दीप्ति ऐसा क्यूँ मान रही है? उसे ऐसा क्यूँ प्रतीत हो रहा है कि कदाचित प्रेम में हैं? प्रतीत हो रहा है। उसे ऐसा प्रतीत हो रहा है। उसे इस विषय में संदेह क्यूँ है? वह क्यूँ प्रेम का अनुभव नहीं कर पाती? और उसका प्रतीत होना भी कितना अनिश्चित है?

कदाचित!

यह कदाचित शब्द न जाने कितनी सारी कथाओं को अपूर्ण बना देती होगी? एक लटकता शब्द! यह लटकता शब्द कितनी ही धारणाओं का सर्जन कर देता है, कितनी ही संभावनाओं को परास्त कर जाता है। ऐसी अनिश्चितताओं में बह जाते हैं कितने ही जीवन!

‘कदाचित’ एक शब्द नहीं, एक तरंग होगी, कदाचित!’

उस तरंग में बह जाते जीवन समय के किसी समुद्र में डूब जाते हैं। किसी अतल गहराई में समा जाते है। क्या दीप्ति भी इस ‘कदाचित’ शब्द द्वारा समुद्र की किसी तूफ़ानी तरंग को आमंत्रण दे रही है?

कदाचित।

सामने दिख रहे समुद्र में एक विशाल तरंग आकर तट के द्वार को खटखटा गई। उसकी थपकी निश के ह्रदय के द्वार पर भी पड़ी। उसे कंपित कर गई।

समुद्र में लौट जाती तरंगों को निश देखता रहा।

यह तरंगें! ये वही तरंगे हैं जिसमें कुछ समय पूर्व तक भीगते रहे थे, नहा रहे थे, दोनों, दीप्ति और निश।

लौटती तरंगों की भांति क्या दीप्ति की उर्मियाँ भी उभरकर शांत हो रही है? क्या है दीप्ति के मन में?

उसने दीप्ति के नयनों में देखने का प्रयास किया। वे नयन तो कॅफे की छोटी सी गवाक्ष में से दिख रहे व्योम की दिशा में स्थिर थे। वह दीप्ति के नयनों में प्रवेश नहीं कर पाया। उसने दीप्ति का विक्षेप नहीं किया। वह मौन हो गया। दीप्ति के शब्दों के प्रतिघोष को सुनता रहा।

“मुझे प्रतीत हो रहा है कि कदाचित हम प्रेम में हैं।”

मौन की लहराती तरंगों में वह भीगता रहा। गवाक्ष से बहार देख रहे दीप्ति के नयनों में डूबता रहा।

गवाक्ष के बहार था एक व्योम। व्योम के नीचे था एक समुद्र। समुद्र को था एक तट। तट पर उछलती थी तरंगें। और उसी तरंगों में अभी अभी एक सुंदर संध्या दीप्ति और निश के साथ क्रीडा कर रही थी।

एक अनुपम संध्या! रंगों से भारी संध्या। केवल नीले रंग को धारण किए हुए व्योम को असंख्य रंगों से भर गई थी संध्या। दीप्ति और निश के प्रणय के प्रारंभ की संध्या।

दीप्ति और निश पत्रमित्र थे। इंटरनेट के युग में भी एक स्पंदन अभी भी स्पंदित था।

‘स्पंदन!’

स्पंदन पत्रमित्रों के लिए एक सामयिक। इसी से दोनों की पत्रमैत्री हो गई। पत्र लिखे जाने लगे, पढे जाने लगे। प्रत्युत्तर दिए जाने लगे। क्षितिज विस्तृत होने लगी।

समय का एक प्रवाह बित गया। दोनों की मित्रता पहाड़ बन गई। अडग, अटूट।

दीप्ति, 19/20 की आयु की कॉलेज में पढ़ रही युवती। निश, 23/24 की आयु वाला, नया नया नौकरी के द्वारा अपने परों पर खड़ा होने का प्रयास कर रहा युवा। जीवन समुद्र में अपनी नैया लेकर निकल पड़ा एक नाविक।

दीप्ति समुद्र तट पर बसे छोटे से नगर में हॉस्टल में रहकर अभ्यास कर रही थी। निश समुद्र से दूर किसी बड़े नगर में रहता था।

दीप्ति के पत्र नियमित रूप से आते रहते थे। निश सदैव उसके पत्रों की प्रतीक्षा करता। दीप्ति के हाथों से लिखे शब्दों की सुगंध उसे अच्छी लगती। उनमें उसे दीप्ति की आकृति दिखती। वह उस आकृति की कल्पना करता। केवल कल्पना।

पत्र मैत्री का नियम था, कोई किसी को अपना चित्र नहीं भेजेगा। दोनों इस नियम का पूर्ण पालन करते थे। तभी तो आज तक उन्होंने एक दूसरे के व्यक्तित्व की कल्पना ही की थी। पत्र लिखनेवाले का व्यक्तित्व तो उसके शब्दों में ही प्रतिबिंबित हो जाता है इसी लिए मुख देखकर

व्यक्तित्व की परख करने की प्रथा पत्र मित्रों में नहीं होती है। दोनों इस प्रथा का पूरा सम्मान करते थे।

उस दिन संध्या को घर आते ही निश के हाथों में दीप्ति का पत्र था। वह उसे शीघ्रता से खोलकर पढ़ने लगा। ऐसा वो हर बार करता। जब जब दीप्ति का पत्र आता, वह ऐसा ही करता। आज भी वह गवाक्ष के समीप गया और दीप्ति का पत्र पढ़ने लगा।

“तू तो व्यस्त होगा तेरे कामों में। किन्तु, उन काम में से यदि थोड़ा समय निकाल सके तो एक आमंत्रण है।

कॉलेज से एक प्रवास जा रहा है, सात आठ दिनों के लिए। उन दिनों कॉलेज में अवकाश रहेगा। कई सारे विद्यार्थी प्रवास में जाएंगे। मैं नहीं जा रही हूँ। यदि तू चाहे तो यहाँ आ जा। साथ बैठकर समुद्र के गर्जन का अनुभव करेंगे। उसके संगीत को सुनेंगे। एक दिन के लिए भी आएगा तो चलेगा।”

पढ़ते ही निश के भीतर एक समुद्र गर्जन करने लगा। उसने समुद्र को कह दिया, “मैं आ रहा हूं, मित्र।”

दीप्ति के नयन उन शब्दों को पढ़कर स्मित दे बैठे, दर्पण को। उसने दर्पण में देखा कि अपने अधर भीगे हुए हैं।

समुद्र की भीगी रेत पर दोपहर चार बजे मिलन निश्चित किया गया था। निश पाँच मिनिट पूर्व ही आ गया। दीप्ति को खोजने लगा।

दीप्ति।

कौन होगी? कैसी होगी? कहाँ होगी? उसके मन में थे ये प्रश्न। जिनके उत्तर थे मौन, रेत की भांति।

वह प्रत्येक युवती को देखने लगा, इस अपेक्षा से कि इनमें से ही कोई दीप्ति होगी। प्रत्येक में दीप्ति को खोजता वह तट पर घूम रहा था। किन्तु, वह दीप्ति को खोज नहीं पाया।

वह तट पर समुद्र के समीप आ गया। तरंगों के प्रत्यक्ष खड़ा हो गया। एक तरंग उसके चरणों को स्पर्श कर गई। उसके जूते भीग गए। थोड़ा समुद्र उसके कपड़ों को भी भिगो गया। उसने उस तरंग पर दृष्टि डाली, उसे एक स्मित दिया। तरंग को लज्जा आ गई हो ऐसे समुद्र में ही लौट गई।

दूसरी तरंग आई। उसने भी वैसे ही किया। तीसरी, चौथी..। एक एक कर तरंगें आती रही। वैसा ही करती रही। निश ने तरंगों को गिनना छोड़ दिया।

अब वह तरंगों की क्रीडा में व्यस्त हो गया। भात भात की क्रीडा करने लगा। निश को यह क्रीडा भा गई। वह तरंगों की दुनिया में सरक गया।

सहसा किसी ने पीछे से उसकी पीठ पर हाथ का प्रहार किया। वह आगे की तरफ गिर गया। तरंगों ने उसे नहला दिया। वह क्रोधित हो गया। उसने मुड़कर देखा। सामने उसके एक युवती दिखी। वह हंस रही थी, मुक्त मन से। किसी भी भय के बिना। वह अविराम हंस रही थी। उसके हास्य को डेख निश का क्रोध पिघलने लगा।

“मैं दीप्ति, तेरी पत्र मित्र।” उसने अपना हाथ निश की तरफ बढ़ा दिया। उसकी आँखों ने स्मित दिया। निश दुविधा में पड गया- बढ़े हुए हाथ का प्रथम स्वीकार करें या आँखों के स्मित का? निश ने स्मित का स्वीकार किया। दीप्ति का स्मित और मुखर उठा। उसका हाथ अभी भी बढ़ा हुआ था। निश ने उस हाथ को देखा। उसे दीप्ति की हथेली दिखी। उसमें बसी हस्तरेखाएं देखि। एक क्षण के लिए उन रेखाओं में निश अपने नाम की रेखा को खोजने लगा। उसे कोई रेखा अपनी सी लगी। वह रेखा को ध्यान से देखने लगा। उसने बढ़े हुए हाथ को अपना हाथ दे दिया। दीप्ति के हाथ के सहारे वह खड़ा हो गया।

उसने पुन: दीप्ति की हथेली में उस रेखा को देखने की चेष्टा की। वह रेखा अब वहाँ नहीं थी। उसने हस्तरेखाओं को हथेली में ही छोड़कर दीप्ति के मुख पर दृष्टि की। वह स्मित अभी भी वहीं था, उसके अधरों पर। वह स्मित उस हस्तरेखा की भांति छल करता हुआ सरक नहीं गया था। उसने उस स्मित को अपना स्मित दे दिया।

“तू निश है, हैं न?” प्रथम बार दीप्ति के अधरों ने स्मित के बदले शब्दों को स्थान दिया। निश ने पलकों से सम्मति दी। किन्तु उसकी आँखों में कोई अपरिचित भाव उभर आए।

दीप्ति ने उसे पढ़ लिया।

“निश, तेरी आँखें कुछ पूछ रही है।”

“ओह। तुझे नयनों को पढ़ना अच्छी तरह से आता है। तो बता दे ये क्या पूछ रही है।”

“हम पत्रमित्र हैं। उसके नियम अनुसार हमने कभी एक दूसरे को देखा तक नहीं है। तथापि मेरे नयनों ने तुझे कैसे पहचान लिया? बस इतना सा प्रश्न पढ़ने में आता है।” दीप्ति निश की आँखों को पढ़ गई।

“तो उस प्रश्न का उत्तर भी तुझे ही देना होगा।” निश ने दीप्ति के पकड़ रखे हाथ को अधिक ऊष्मा से दबाया। वह हाथ ऊष्मावाहक था। उसमें से बहकर ऊष्मा दीप्ति के अंगों में प्रवाहित हो गई।

“सरल है इसका उत्तर।” दीप्ति हंस पड़ी।

“तुझे सरल प्रतीत होता प्रश्न मेरे लिए कठिन भी हो सकता है। मुझे नहीं आता वह उत्तर। तु ही बता दे।”

निश ने दीप्ति के नयनों के समक्ष अपनी पलकें झुका दी, मस्तिष्क भी।

“ठीक है, ठीक है। तेरे जींस की पिछे की जेब में क्या है? तू जानता है?”

दीप्ति की बात सुनते ही निश का हाथ अनायास ही पिछली जेब में गया। उसके हाथ को एक पत्र का स्पर्श हुआ। उसने उसे हथेली में ले लिया। दीप्ति को धर दी उस हथेली। दोनों की दृष्टि उस हथेली में रहे पत्र पर गई।

दीप्ति का लिखा अंतिम पत्र था वह।

दोनों के नयन मिले। दोनों को उत्तर मिल गया। दोनों नयनों ने परस्पर स्मित दिए। एक बड़ी तरंग आकर चली गई। दोनों को भिगो गई। कुछ भी कोरा न रहा।

वह संध्या अनेक रंगों को लेकर आई। दोनों ने उसे मन भर भोगा। अनेक रंगोली सजाई। अनेक इंद्रधनुष सजाए। समुद्र, रेत, सूरज, संध्या, व्योम, फेन, तरंग, पवन, नैया, बादल....।

सूरज अस्त हो गया। सभी रंग एक दूसरे में घुल गए। व्याप्त हो गया काला रंग, सभी क्षितिज में। मन और ह्रदय की क्षुधा-तृषा अभी भी अतृप्त थी। वह तृप्त होने का नाम ही नहीं लेती थी। अभी भी कुछ और क्षण साथ रहने को मन ललचा रहा था। किन्तु, समय की तरंगें रुकना नहीं जानती थी।

अब पेट को भी भूख लगी। दोनों बैठ गए कॅफे के टेबल पर।

निश दीप्ति को देख रहा था। उसकी आँख में अभी भी दूर दिख रहा व्योम था। उसके कहे हुए शब्द अभी भी निश के गगन में गूंज रहे थे।

“मुझे प्रतीत हो रहा है कि कदाचित हम प्रेम में हैं।”

दीप्ति ने गवाक्ष से दृष्टि खींची तो व्योम काफे से बाहर छूट गया। निश से नयन मिले। किन्तु मुख के भाव स्थिर ही रहे।

एक वेईटर आकर ऑर्डर ले गया। एक लंबी प्रतीक्षा आकर टेबल पर बैठ गई।

“दीप्ति, आज की संध्या कितनी रम्य है!” निश ने मौन तोड़ा।

“ऐसी संध्या सदा मिले तो? तुझे..?”

“सदा ऐसी संध्या? वो कैसे?”

“संभव है वह।”

“तेरी इस संभावना को कहोगी?”

“अवश्य। मेरे शब्दों का स्मरण है क्या? मैंने अभी अभी कहा था, ‘मुझे प्रतीत हो रहा है कि कदाचित हम प्रेम में हैं’। तुझे भी ऐसा प्रतीत होता है?”

“दीप्ति, तुझे तो प्रतीत हो रहा है, मुझे तो पूर्ण विश्वास है की हम प्रेम में हैं। मुझे कोई संदेह नहीं है।”

“ओह। सत्य कह रहे हो? तो तू मेरे प्रेम में पड ही गया।”

“क्यों, नहीं पड़ना था? ऐसा था तो तुझे पहले ही कह देना था कि हमने भले ही यह संध्या साथ बिताई। किन्तु तुझे मेरे प्रेम ब्रेम में पड़ना नहीं है। संध्या बीती और बात गई।” निश ने दीप्ति को छेड़ने के लिए उपहास किया।

“ओह। ये बात है? यदि मैंने ना कही होती तो तू क्या करता? मुझ से प्रेम करना रोक लेता?”

“नहीं जानता। किन्तु मैं तुझे प्रेम करता हूँ। बस मैं इतना ही जानता हूँ।”

“तू मुझे प्रेम क्यूँ करता है?”

“क्यूँ? अर्थात? प्रेम कर ..।”

“अर्थात तू मुझ से प्रेम क्यूँ करता है? प्रेम का कारण क्या है?”

“प्रेम का कारण? मित्र, प्रेम के कारण नहीं होते।”

“इस संसार में बिना कारण कुछ भी नहीं होता। प्रेम को भी कारण होता है। तुझे वह कारण मुझे कहना होगा।”

“मैं तुझे प्रेम कर.... करता हूँ। क्यूँ की...।” निश कारण खोजने लगा। उसे कोई कारण नहीं मिला। वह बोलते बोलते रुक गया।

“क्यूँ कि? बोल न? क्यूँ रुक गया? वह कारण कह दे। मुझे जानना है वह कारण।”

“मुझे कोई भी कारण नहीं मिल रहा। कोई कारण ही नहीं है तुझे प्रेम करने का।”

“बिना कारण कोई कुछ भी नहीं करता, प्रेम भी नहीं। तू खोज ले वह कारण।”

“कारण खोजकर प्रेम करना मुझे नहीं आता। मैं तो प्रेम करता हूँ, बिना किसी कारण।”

“बिना कारण कैसे? हाँ, तू कारण बताना नहीं चाहता तो तेरी इच्छा। किन्तु...।” दीप्ति ने निश की आँखों में तीव्र दृष्टि करते हुए बात अधूरी रखी।

“वास्तव में कोई कारण नहीं है। और यदि होगा तो मैं नहीं जानता। यदि तू जानती हो तो बता दे।” निश ने बात को दीप्ति की तरफ मोड दी।

“निश, एक युवक एक युवती को अनेक कारणों से प्रेम करता है। तेरे पास भी ऐसा ही कोई कारण होगा।”

“तू वे अनेक कारण बता सकती है?”

“मेरी आँखें, मेरे अधर, मेरे गाल, मेरा स्मित, मेरे केश, मेरी भाव मुद्राएं, मेरे नयन कटाक्ष, मेरा शरीर, मेरा अस्तित्व, मेरे पत्र, मेरी भावनाएं, मेरे शब्द, मेरा सौन्दर्य, मेरा यौवन...।” दीप्ति की गणना बढ़ती जा रही थी उसे निश ने रोका।

“ओहो। इतने सारे कारण? किन्तु इनमें से कोई भी कारण मेरे काम का नहीं है।”

“इतने सारे कारण है और तू उन्हें स्वीकार नहीं कर रहा? क्यूँ?”

निश कुछ क्षण मौन हो गया। वह शब्दों को अधरों पर लाने से बचता रहा। किन्तु दीप्ति ने उसे आग्रह किया तो उसे बोलना ही पड़ा।

“दीप्ति, जो जो कारण तूने दिए हैं वे सभी परिवर्तनशील हैं, नाशवंत हैं। आज है तो कल नहीं। और यदि कल भी होंगे तो भी वे आज के इस रूप में नहीं होंगे। जब नहीं होंगे या परिवर्तित रूप में होंगे तब?”

“तब? क्या होगा तब?”

“यदि प्रेम के यही कारण होंगे तो वह प्रेम भी उन कारणों के साथ नष्ट हो जाएगा। मुझे ऐसे नाशवंत कारण...।”

“तो तेरे पास शाश्वत कारण है? जो कभी न बदले, कभी न नष्ट हो?”

“नहीं जानता। किन्तु ऐसे नाशवंत कारण तो नहीं हैं।”

“तू बात को घुमाना अच्छी तरह से जानता है। किन्तु मैं तुझे आज नहीं छोड़नेवाली। कारण तो मैं जानकार ही रहूँगी।”

“दीप्ति, मैं जानता हूँ कि तू बड़ी हठीली है किन्तु कुछ बातों में....।”

“निश, प्रेम भी अपने आप में एक हठ ही है न? प्रेम का दूसरा नाम ही हठ है। प्रेम में हठ करना मुझे पसंद है।”

“किन्तु तेरी यह हठ मिथ्या है। तू रूठ जाए और मनाने की हठ करती तो मैं मना लेता। किन्तु...।“”

“किन्तु तू किसी भी रूप में प्रेम का कारण नहीं कहेगा। यही न?”

“दीप्ति, जो नहीं है वह नहीं है। जो नहीं है उसे मैं कहाँ से...?”

“मैं यह बात मान ही नहीं सकती। या तो तू झूठ बोल रहा है या मुझे कहना नहीं चाहता।” दीप्ति का स्वर कर्कश होने लगा।

“दीप्ति, प्रेम में झूठ नहीं होता। मैं सत्य कह रहा हूँ। प्रेम में विश्वास...।”

“निश, मैं अंतिम बार पूछती हूँ। तू मुझे कारण बताएगा या नहीं?” दीप्ति के नयनों ने भाव बदल दिए।

निश कुछ समय के लिए मौन हो गया। वेटर सूप के दो पात्र रखकर गया। दोनों चुपचाप सूप की चुसकियाँ लेने लगे।

सूप पूर्ण हो गया किन्तु अधूरी रही बात अभी भी अधूरी ही थी। दीप्ति के मन में वह भंवर की भांति घूम रही थी। वे भंवर उसके अधरों पर आ बैठे, “तो तू मुझे वो कारण बता रहा है, है न?”

“फिर से वही बात? मैंने कहा न कि मेरे पास ऐसा कोई कारण नहीं है। बस तुमसे प्रेम करता हूँ, यूं ही।” गरम सूप से जली निश की जीभ ने कहा।

संभवत: दीप्ति की जीभ अधिक जली होगी सो उग्र हो गई। वह बार बार निश से एक ही प्रश्न करती रही। निश शांति से उसे समझाता रहा। किन्तु दीप्ति आज किसी अन्य मनोदशा में थी। वह निश की किसी भी बात को मानना नहीं चाहती थी।

“ठीक है। तुझे कहना ही नहीं हो तो तेरी इच्छा। मैं तेरे साथ रहना नहीं चाहती।” दीप्ति क्रोध से खड़ी हो गई।

ऑर्डर अनुसार वेटर भोजन लेकर आया, परोसने लगा।

“चल, पहले भोजन कर लेते हैं। बैठ जा।” निश ने दीप्ति का हाथ पकड़ लिया।

झटके से दीप्ति ने अपना हाथ छुड़ा लिया।

“मुझे नहीं खाना है। बैठना भी नहीं है। मैं जा रही हूँ।”

दीप्ति कॅफे को छोड़कर चली गई। निश उसे जाते हुए देखता रहा।

रात्री को दीप्ति जब हॉस्टल पहुंची तो चौकीदार ने उसे एक पत्र दिया। उसने नाम पढ़ा।

निश!

वह पत्र निश का था। दीप्ति सीधे ही अपने कक्ष में गई और पढ़ने लगी।

“तेरे जाने के पश्चात एक वेटर दूसरे से कह रहा था कि इन प्रेमियों को प्रेम का कारण मिले न मिले, किन्तु लड़ने का कारण अवश्य मिल गया है। मुझे उसकी बात सत्य प्रतीत हो रही है।”

निश के लिखे शब्द दीप्ति को विचलित कर गए। उसे अपने व्यवहार पर क्षोभ होने लगा। उसने घड़ी देखि। दौड़ती हुई हॉस्टल से निकल गई। बस स्टेंड में प्रवेश कर गई।

दूसरे द्वार से एक बस बाहर निकल गई। जाती हुई बस का नाम उसने पढ़ा। निश के नगर जानेवाली वह अंतिम बस थी।

वह बस चूक गई, निश को भी। एक श्याम मेघ चंद्र को ढँक गया। वर्षा की दो चार बूंदें पलकों को त्यागकर गालों पर आ गई। दीप्ति के हाथ से निश का पत्र सरक गया। पवन में कहीं दूर उड गया। समुद्र अभी भी गर्जन कर रहा था।

સમાપ્ત

[4] उन्माद

रात्री के शांत वातावरण में नागपुर रेलवे स्टेशन पर ट्रेन की प्रतीक्षा करती वह बैठी थी। मन के विचारों को शांत करने का प्रयास करती थी तभी हिमसागर एक्सप्रेस प्लेटफ़ॉर्म पर आ गई। उसने समय देखा।
2.30
वह मन में बड़बड़ाई, 'आज कल समय से पूर्व आ जाने की ट्रेन की बुरी आदत है।'

ट्रेन रुक चुकी थी। विवश होकर वह उठी, अपने डिब्बे में घुसी। अपनी बर्थ पर आ गई।

बर्थ पर खुला हुआ कंबल, चादर, तकिया आदि पड़े थे।

'यह यात्री नागपुर या उसके पूर्व किसी स्टेशन पर उतर गया होगा। किन्तु उसका यह पुराना सेट हटाकर नया सेट क्यूँ नहीं रखा? इतनी रात गए एटेनडेंट कहीं सो रहा होगा। चल उसे उठाती हूँ।'

वह निकल पड़ी उसे ढूँढने जो वहाँ कहीं नहीं था। ट्रेन चलने लगी तब वह डिब्बे में चड़ा।

"भैया, मेरी सीट पर कंबल का नया सेट दे जाना।"

अपनी बर्थ पर वह प्रतीक्षा करती रही किन्तु वह नहीं आया। क्रोध में उसने बर्थ पर पड़े कंबल आदि उठाए और उसके पास आ गई।

"हटाओ इसे। मुझे नया सेट दो।"

"देता हूँ, आप वहाँ बैठो।" उसने कंबल ले लिए।

वह अपनी बर्थ पर जाने लगी तभी एक क्षण के लिए रुकी।

'यह सुगंध कहाँ से आ रही है? मैं इस सुगंध को जानती हूँ, कदाचित। परिचित सी यह सुगंध कहाँ से आ रही है?'

नासिका को सतेज कर वह सुगंध के मूल को खोजने लगी।

'कदाचित उस कंबल से तो नहीं आ रही?'

उसने अपनी हथेली सूंघी।

'यह सुगंध मेरी हथेली में भी है। कहाँ से आई होगी? उसी कंबल से ही आई होगी।'

उस सुगंध को श्वास में भर लेने के लिए उसने गहरी सांस ली और अपनी बर्थ पर जा बैठी।

‘इस सुगंध से कोई तो परिचय है मेरा। किन्तु…?’

वह नया कंबल का सेट देकर चला गया।

‘चल शीघ्रता से सो जाती हूँ। दस बार घंटे पहले उठना ही नहीं है। कितना थक गई हूँ मैं!’

बर्थ के नीचे अपने सामान को वह सजाने लगी। किन्तु कुछ अटक रहा था जो समान को भीतर जाने नहीं दे रहा था। उसने बर्थ के नीचे हाथ फेरा।

‘कुछ पुस्तक जैसा लग रहा है।’ उसने उस पुस्तक को बाहर खींच निकाला।

‘अब यह भीतर चला जाएगा।’ उसने समान को धक्का लगाया। समान सज गया।

‘हाश। अब शांति से सो जाती हूँ।’

सोने के लिए जैसे ही उसने अपने पैर उठाए, उसकी दृष्टि उस पुस्तक पर पड़ी।

‘अब इसे कहाँ रखूं?’ उसने तकिये के नीचे वह रख दिया। आँखें बंद कर ली किन्तु वही परिचित सुगंध नाक में प्रवेश कर गई।

‘फिर से वही सुगंध? कहाँ से आ रही है? मेरे पिछे ही पड गई है यह तो?’ उसने हथेली सूंघी।

‘फिर से यह सुगंध मेरी हथेली को लग गई है। ओ सुगंध, तू कहाँ से आ रही है?’ सुगंध ने कोई उत्तर नहीं दिया।

‘कहीं इस पुस्तक से तो नहीं आ रही?’

उसने तकिये को सूंघा। सुगंध तीव्र हो गई। तकिये के नीचे से उसने पुस्तक खींचा।

‘यह सुगंध मुझे सोने नहीं देगी। इस पुस्तक को पढती हूँ। हो सकता है यह पुस्तक ही सुगंध की प्रहेलिका को सुलझा दे।’

वह उठी। पुस्तक पढ़ने के लिए बत्ती जला दी। किसी बर्थ से कोई यात्री चीख, “बत्ती बुझा दो।”

उसने बत्ती बुझा दी। मोबाइल के प्रकाश में पुस्तक पढ़ने लगी।

‘यह तो किसी की डायरी लग रही है‘’

डायरी के प्रथम पृष्ठ पर लिखे शब्द उसने पढे।

‘उन्माद’

‘ये हस्तलेख भी परिचित है। कहीं तो पढे हैं। किसके होंगे? प्रथम वह सुगंध और अब ये हस्तलेख। कौन है यह परिचित?’ उसने पृष्ठ पलटा।

‘वासुदेव।’ उसने नाम पढ़ा।

‘यह किसी वासुदेव की डायरी होगी।’ दो चार बार वह वासुदेव का नाम बोल गई।

‘ओहो। तो यह डायरी तेरी है, वासुदेव! और वह सुगंध भी।’ उसके अधरों पर स्मित आ गया। क्षण में ही वह स्मित विलुप्त हो गया।

‘तो तुम यात्रा कर रहे थे इस बर्थ पर, वासुदेव। और नागपुर स्टेशन पर उतर गए? बरसों बित गए तुझे मिले। यह क्षण आई तुझे मिलने की और मैं चूक गई। तू कहाँ है वासुदेव?’

वह झट से उठी। गहरी नींद में पड़े एटेनडेंट को जाकर बोली, “अभी जो कंबल मैंने तुम्हें दिया था वह मुझे चाहिए।”

“इतनी रात क्यूँ परेशान कर रही हो? वो कंबल अब न मिलेगा।”

“क्यूँ नहीं मिलेगा?”

“मेडम, अभी तो आप उस कंबल को उठा लेने के लिए गुस्सा कर रही थी और अब वही कंबल आपको चाहिए? ऐसा नहीं हो सकता। जाओ, जाकर सो जाओ और मुझे भी सोने दो।”

“कुछ भी करके मुझे वह कंबल लाकर दो।”

“नहीं दूंगा।” कहकर वह सो गया।

वह लौट आई अपनी बर्थ पर।

‘अब क्या करूँ? वासुदेव यहीं उतरा होगा। अधिक दूर नहीं गया होगा। उसे मिलना ही है। एक काम करती हूँ, अगले स्टेशन पर उतर जाती हूँ।

किन्तु अगला स्टेशन इटारसी साढ़े सात बजे आएगा। तब तक तो विलंब हो जाएगा। यहीं कहीं उतर जाती हूँ। टेक्सी पकड़कर नागपुर चली जाती हूँ। मैं जानती हूँ वह नागपुर में कहाँ मिलेगा। किन्तु उतरने के लिए भी ट्रेन रुके तब ना? ट्रेन कैसे रुकेगी? जंजीर खींच लूँ तो? तो ट्रेन रुक ही जाएगी।’

वह उठी। जंजीर खींची। एक लंबे चीत्कार के साथ रात्रि को चीरती हुए ट्रेन रुक गई।

उसी समय एक आकृति अंधकार में उसकी बर्थ की तरफ धीरे धीरे बढ़ रही थी। वह उस बर्थ तक पहुँचने की शीघ्रता में थी। वह वहाँ पहुंचे उससे पूर्व ही ट्रेन झटके के साथ रुक गई। उस झटके ने अनेक यात्रियों को नींद से जगा दिया। वे सभी परिस्थिति को समजने का प्रयास कर रहे थे तभी गाड़ी से डायरी लेकर वह उतर पड़ी। बाकी सामान छूट गया।

उस आकृति ने उसे गाड़ी से उतरते हुए देखा। वह भी उसके पीछे गाड़ी से उतर गई।

रात्रि के अन्धकार में वह भाग जाना चाहती थी तभी उस पर एकसाथ अनेक टॉर्च की बत्तियों का प्रकाश पड़ा। वह लोगों से घिर गई। आकृति दूर ही रुक गई। सब कुछ देखने लगी।

“आपने ही जंजीर खींची है न?”

उसने नकार में चहेरा घुमाया।

“झूठ बोल रही हो? तुम हाग क्यूँ रही हो? पकड़ लो इसे।” वह रैलवे पुलिस के बँधन में आ गई। उसे एक छोटे से स्टेशन पर लेकर आए। वह आकृति भी उनके पीछे पीछे चलने लगी।

“इसकी एफआईआर बनाओ और डाल दो लोक आप में।”

वह आकृति दूर से उन सभी को देख रही थी, कार्यवाही को निरख रही थी।

थोड़े समय के पश्चात एक महिला कर्मी ने कहा, “यहाँ हस्ताक्षर करो।”

“ठीक है, किन्तु यह तो कहो कि मेरे विरुद्ध क्या क्या अपराध घड़े हैं?”

“ट्रेन के कर्मचारी के साथ लड़ना, साथी यात्रियों की यात्रा में विक्षेप करना, जंजीर खींचना, दंड नहीं भरना, जांच में सहयोग न करना।”

“उसमें एक अपराध और जोड़ दो।” भीतर प्रवेश करते हुए उस आकृति ने कहा।

“कौन सा अपराध?”

“मेरी डायरी चोरने का।”

ये शब्द सुनते ही वह चौंक गई।

“नहीं, नहीं। मैंने यह डायरी चुराई नहीं है।”

“तो क्या है यह तुम्हारे हाथ में?”

उसने अपने हाथ में रही डायरी पर दृष्टि डाली।

“यह तो मेरी बर्थ के नीचे से मिली है मुझे। यह मेरे मित्र वासुदेव की है“”

उसने भीतर आ चुकी आकृति पर दृष्टि डाली।

“वासुदेव, तू? तू इन लोगों को बता दे कि तेरी यह डायरी मैंने चुराई नहीं है। वह तो मुझे बर्थ के नीचे से…।”

“जानता हूँ मैं।” वासुदेव ने ठंडा प्रतिसाद दिया।

“तो समजा इन्हें और मुझे यहाँ से छुड़ा।”

“तुझे छूटना है?”

“कैसा विचित्र प्रश्न कर रहा है तू? मुझे इसमें से छुड़ा।”

“ऐसा क्या?”

“नहीं तो? मैं यहाँ एक मिनिट भी नहीं रुकना चाहती। तू…।”

“ठीक है किन्तु तुम्हें मेरी एक बात माननी होगी।”

“तेरी सभी बातें मानूँगी। बस तू मुझे यहाँ से छुड़ा पहले।”

वासुदेव ने गहरी सांस ली, एक क्षण का समय लिया। तब तक वह अपना धैर्य खो चुकी थी।

“क्या सोच रहा है? बता तेरी क्या बात है?”

“बात इतनी ही है कि अब तू कभी आत्म हत्या नहीं करेगी। मानेगी?”

“आत्म हत्या और मैं? क्या कह रहा है तू? आत्महत्या से मेरा क्या लेना देना?”

“तू मेरी बात मानती है या नहीं?”

“किन्तु..?”

“तुझे यहीं रहना है तो मैं तो चला।” वासुदेव ने डायरी ले ली।

“इनका अच्छी तरह से ध्यान रखना।” जाते जाते वासुदेव ने रेलवे पुलिस की महिला कर्मी को व्यंग में कहा।
वह चीख उठी, “वासुदेव...।”
उसके चीत्कार से रात्रि कांप गई। वासुदेव रुक गया। उसने देखा कि उन नयनों में याचना थी। वह लौट आया। उसने तीव्र दृष्टि से और आदेश के भाव से उनको देखा।
“मैंने कहाँ आत्महत्या की है?”
“वह सब अभी नहीं। मेरी बात माननी है या नहीं?”
वह विवश थी। उसने वासुदेव की बात मान ली।
“ठीक है, साब। इसे मुक्त कर दीजिए। मैं जो भी दंड है भर देता हूँ। मैं इसकी जिम्मेदारी लेता हूँ। और इसकी तरफ से क्षमा भी माँगता हूँ।”
वासुदेव ने औपचारिकता पूरी की। रेलवे पुलिस ने उसे मुक्त कर दिया। वे दोनों अपरिचित, सुनसान, छोटे स्टेशन की किसी अपरिचित बैठक पर जाकर बैठ गए। समय की प्रतीक्षा करने लगे।
रात्रि का अंधकार अपने चरम पर था, तो रात्रि का मौन अपने शिखर पर।
वासुदेव कुछ बोले उसकी वह प्रतीक्षा करने लगी। किन्तु वासुदेव ने तो मौन धारण कर लिया था। वह दूर कहीं अंधकार में देख रहा था।
“ऐसे कब तक बैठे रहेंगे, वासुदेव? कुछ बोलता क्यूँ नहीं है?” उसने अपना धैर्य खो दिया।
वासुदेव ने उसे देखा। उसकी दृष्टि में जो भाव थे उसे वह पढ़ न सकी। किन्तु उसमें जो धार थी वह उसे भीतर से काट रही थी। भीतर की पीड़ा उसके मुख पर उभर आई। उसने आँखें झुका दी।

“वासुदेव, तू इतने वर्षों पश्चात मिला और वह भी इस तरह? तू यहाँ कैसे आ गया?” उसने संवाद करने का प्रयास किया। वासुदेव मौन ही रहा।
“वासुदेव, मुझ से बात नहीं करनी है तो ठीक है किन्तु मैं तुम्हें कुछ पूछ रही हूँ उसका तो उत्तर दे।” वासुदेव ने अभी भी मौन भंग नहीं किया।
“वासुदेव...।” वह जोर से चीखी। शांत स्टेशन पर उसकी चीख घूमने लगी। उसने वासुदेव का हाथ पकड़ लिया। वासुदेव ने उसको देखा। अपने को शांत किया।
“मैं? मैं तो उस ट्रेन से यात्रा कर रहा था। उस बर्थ पर मेरा आरक्षण नागपुर तक ही था। आगे की यात्रा के लिए मुझे दूसरी बर्थ मिली थी। नागपुर आते ही मैं अपनी बर्थ पर चला गया। सब सामान रखते ही मुझे ध्यान आया कि मैं अपनी डायरी तो पुरानी बर्थ पर भूल आया हूँ। वही

लेने मैं वहाँ आ रहा था तभी तुमने जंजीर खींची और ट्रेन रुक गई। मैंने तुझे नीचे उतरते हुए देखा। तेरे हाथ में मेरी डायरी भी देखि तो मैं भी नीचे उतर गया। मैं तुझ तक पहुंचता उससे पूर्व ही रेलवे पुलिस ने तुम्हें पकड़ लिया। और हम यहाँ आ गये।" वासुदेव पुन: मौन हो गया। उसे देखता रहा।

“तू ऐसे क्यूँ देख रहा है मुझे? डर लगता है।” उसने पुन: बात करने की चेष्टा की।

“एक जीवित मनुष्य को देखकर एक मृत व्यक्ति को डर लग रहा है ऐसा तो पहली बार हो रहा है।”

“जीवित व्यक्ति, मृत व्यक्ति! यह सब क्या है वासुदेव?”

“मृत व्यक्ति से बात करना मुझे पसंद नहीं है।” वासुदेव पुन: मौन हो गया।

वह व्याकुल हो गई। उसने वासुदेव को देखा। वह अधिक भयग्रस्त हो गई।

“वासुदेव, तू कुछ बोल। इस नीरव स्थान पर भी तू मौन है? मुझे तेरे मौन से भय हो रहा है।”

“मेरे मौन से भय? आत्महत्या करते तो भय नहीं हुआ था?”

“तू क्या बार बार आत्महत्या की बात कर रहा है? मैंने कोई आत्महत्या नहीं की है। मैं जीवित हूँ। तेरे सम्मुख ही हूँ। देख, मुझे देख। मैं एक जीवित व्यक्ति हूँ। मेरे श्वास चल रहे हैं। मेरे स्पंदन चल रहे हैं। मुझे स्पर्श कर देख ले। मैं जीवित हूँ, वासुदेव।”

“यदि तुमने आत्महत्या नहीं की है तो तुमने अपना वास्तविक परिचय ट्रेन में या पुलिस स्टेशन में क्यूँ नहीं दिया? अपने मुख पर से बुर्का क्यूँ नहीं हटाया?”

उसे स्मरण हो आया कि उसका मुख अभी भी बुर्के से आवृत है। किन्तु उसे हटाने की उसने चेष्टा नहीं की।

“यदि तुमने ऐसा किया होता तो तुझे इस संकट में नहीं पड़ना पड़ता।”

“मुझे कई बार हुआ कि मैं बुर्का हटा दूँ, मेरे नाम को प्रकट कर दूँ किन्तु...।”

“किन्तु तुम ऐसा नहीं कर पाई क्यूँ कि तीन दिसंबर 2021 को दोपहर बारह बजे सबके सामने तुमने आत्महत्या कर ली थी। इसे सारे विश्व ने देखा था। मृत व्यक्ति ना तो बुर्का हटा सकती है न ही अपना नाम बता सकती है। और तुम कह रही हो कि तुम जीवित हो?”

“उस दिन तो मैं प्रेस वार्ता कर रही थी।”

“और घोषणा कर रही थी कि तुम अभिनेत्री कोमल को मारकर शिबा बन रही थी। अभिनय और फिल्म जगत का त्याग कर रही थी।”

“हाँ, वही तो?”

“तो वह आत्महत्या नहीं तो क्या है?”

“किन्तु वह तो ...।”

“वह आत्महत्या ही है, शिबा। मुंबई छोड़कर काश्मीर लौट रही हो तुम। यूं अचानक आत्महत्या क्यूँ कर ली तूने?”

एक क्षण के लिए शिबा स्तब्ध हो गई। मौन हो गई। उसने स्टेशन को देखा। गहन अंधकार में वह किसी को खोज रही थी।

“किसे खोज रही हो, शिबा?”

“अ हं हं..।”

“शिबा, कुछ कहो।”

“तुम भी मुझे शिबा ही कहोगे? मुझे तुम तो कोमल कहो न?”

“तुमने उत्तर नहीं दिया शिबा कि, तुम किससे भय रख रही हो?”

“मुझे प्रतीत होता है कि कोई सतत मेरे पीछे लगा है। मुझ पर, मेरी सभी गतिविधियों पर दृष्टि रख रहा है।”

“तुम निर्भय होकर रहो। यहाँ तुम पूर्ण रूप से सुरक्षित हो। रेलवे पुलिस हमारी सुरक्षा के लिए हमारे साथ ही है। वे जानते हैं कि इस निर्जन स्टेशन पर प्रभात से पूर्व कोई गाड़ी आनेवाली नहीं है। न ही कोई यात्री आनेवाले हैं। तभी तो वे हमारी सुरक्षा का ध्यान रख रहे हैं। किन्तु कुछ और बात है शिबा जो तुम अनुभव कर रही हो।”

“वासुदेव, तुम जानती हो कि मैं एक कश्मीरी मुस्लिम स्त्री हूँ। वहाँ के मौलवी मुझे सतत प्रताड़ित कर रहे थे। फतवा कर रहे थे कि तू यह नाच गान छोड़ दे। डरा रहे थे कि इस्लाम में यह सब हराम है। यह मजहब के विरुद्ध है। यदि तूने यह काम नहीं छोड़ा तो...।”

“तो क्या?”

“तो अल्लाह मुझे माफ नहीं करेगा।”

“ऐसा भी क्या?” वासुदेव ने स्मित किया।

“मौलवी कह रहे हैं तो सत्य ही होगा न?”

“तूने स्वयं इस बात की जांच की है?”

“नहीं। ऐसा करने की हमें स्वतंत्रता नहीं है।”

“तेरे जैसी व्यक्ति भी मौलवियों की बातें मान लेती हैं?”

“मैं क्या करती, वासुदेव?”

“स्वयं विचार करती, स्वयं निर्णय करती।”

“मुझे अल्लाह का बड़ा भय लगता है। मैं अल्लाह की गुनहगार नहीं बनना चाहती, वासुदेव।”

“यदि ऐसा ही है तो फिल्मों में कितने सारे मुस्लिम कलाकार काम कर रहे हैं। वे सभी भी तो अल्लाह के अपराधी हैं न?”

“नहीं। ऐसा केवल महिलाओं के लिए ही है।”

“अनेक महिलायें भी काम कर ही रही हैं। उन्हें भय नहीं लगता होगा? भय तुझे अकेली को ही क्यूँ लग रहा है?” वासुदेव ने शिबा को देखा। वह अभी भी भयग्रस्त थी।

“सारे संसार में असंख्य मुस्लिम अभिनेत्रियाँ भी हैं। वे सभी अल्लाह की अपराधीन ही होंगी। अल्लाह उन्हें भी कभी माफ नहीं करेगा, हैं न?”

“मैं नहीं जानती।”

“जो बात तुम जानती नहीं हो उसे मान अवश्य लेती हो। क्यूँ? और उस बात के आधार पर निर्णय भी कर लेती हो?”

“मैंने कहा न कि मैं नहीं जानती। बस, मैं अल्लाह से डरती हूँ।”

“वाह। अल्लाह के नाम से कोई तुझे डरा रहा है और तू डर भी रही है, शिबा। अल्लाह कभी किसी को डराता नहीं। वह तो अपने बंदों को, बंदियों को भी, संकट से पार लगाता है। तो अल्लाह से भय क्यूँ?”

“मैं अत्यंत भयभीत हूँ। मुझे कुछ भी नहीं सूझ रहा कि सत्य क्या है? यही कारण है कि मौलवियों की बातों ने मेरे मन को उत्तेजित कर दिया। उसी उन्माद में मुझे यह निर्णय लेना पड़ा।”

“आपको आपका निर्णय समर्पित हो, शिबा बानू।”

“तू व्यंग कर रहा है? इस स्थित में भी तू मुझे चिड़ा रहा है?”

“नहीं तो?”

“तो क्या बार बार मुझे शिबा कह रहा है? तेरे लिए मैं कोमल हूँ, कोमल। वासुदेव।”

“मैं कोमल की आत्महत्या की प्रशंसा करूँ क्या?”

“अब मैं क्या करूँ?”

“वह निर्णय तुम स्वयं करोगी।”

“क्या मैं ऐसा कर सकूँगी? मैं क्या कर सकती हूँ?”

“तुम क्या चाहती हो?”

“मैं तो फिल्में करना चाहती हूँ। किन्तु ..।”

“तो वही करो।”

“किन्तु मैं सारी दुनिया के सामने इस क्षेत्र को छोड़ चुकी हूँ। अब कैसे होगा?”

“एक उन्माद से तुम फिल्में छोड़ रही हो और दूसरे उन्माद से फिल्म करना भी चाहती हो। कौन सा उन्माद सत्य है? कौन सा मिथ्या? कितने उन्माद लेकर जी रही हो? एक क्षण तुम कंबल नहीं चाहती थी, दूसरे क्षण तुम्हें वही कंबल वापिस चाहिए?”

“मुझे मार्ग दिखाओ वासुदेव।”

“मार्ग तो अभी भी है। किन्तु...।”

“किन्तु क्या?”

“उसके लिए साहस और हिम्मत चाहिए। क्या अभी भी तुझ में वह शेष है?”

“मैं कुछ समज नहीं पा रही हीं, वासुदेव।”

“या कहो कि समजना नहीं चाहती हो।”

“अर्थात?”

“यदि अभी भी साहस शेष बचा हो तो मेरी फिल्म की नायिका बन सकती हो। उसके लिए भय का त्याग करना होगा। कर सकोगी?”

“तेरी फिल्म?”

“मेरी फिल्म के नायक - नायिका साहसी होते हैं।”

“तू नई फिल्म पर काम कर रहा है? क्या नाम सोचा है?”

वासुदेव ने अपनी डायरी खोलकर प्रथम पृष्ठ पर लिखे शब्द पर अंगुली रख दी।

“उन्माद!”

शिबा उसे पढ़ गई। उसने वासुदेव को देखा। प्रश्न था, जिज्ञासा थी, उत्सुकता भी थी उस दृष्टि में।

“हाँ। मेरी नयी फिल्म का नाम यही है, उन्माद। इसमें उसकी स्क्रिप्ट है।”

“मैं देख सकती हूँ?”

“यही अंतर है शिबा और कोमल में।”

“क्या?”

“मेरी स्क्रिप्ट पढ़ने के लिए शिबा को अनुमति लेनी पड़ती है, कोमल को नहीं।”

शिबा वासुदेव के संकेतों को समज गई। उसने स्मित दिया।

“यदि नायिका बनने की सज्जता हो तभी इसे पढ़ सकती हो।”

“किन्तु मैं तो...?”

“किन्तु तुम तो आत्महत्या कर चुकी हो।”

“वहाँ से कैसे लौट पाऊँगी मैं?”

“तेरी इच्छा। शिबा।” वासुदेव ने डायरी अपने पास रख ली।

शिबा ने वासुदेव की तरफ दृष्टि की, उस दृष्टि में एक मित्र से दूसरे मित्र को विनती थी।
वासुदेव ने शिबा को डायरी दे दी।
शिबा 'उन्माद' पढ़ने लगी। वह उसमें डूब गई। वासुदेव मौन रहकर शिबा के बदलते मुख भावों को देखता रहा। शिबा की प्रतीक्षा करने लगा। शिबा ने 'उन्माद' पूर्ण कर ली।
"मैं ही नायिका का चरित्र निभाऊँगी।"
"किन्तु तुम उन लोगों को क्या उत्तर दोगी?"
"अब मैं किसी को कोई उत्तर नहीं दूँगी।"
"तो तुम पुन: जीना चाहती हो?"
शिबा के मुख पर सकारात्मक भाव थे।
"तूने प्रथम जो निर्णय लिया था वह उन्माद में लिया था। क्या यह निर्णय भी ऐसे ही किसी उन्माद में तो नहीं ले रही हो?"
"नहीं। अब मैं ऐसे किसी उन्माद से विचलित नहीं होऊँगी। यह निर्णय मेरा है, मेरा अपना।"
शिबा ने डायरी बंद कर दी। वह खड़ी हो गई। एक अंगड़ाई ली। शीतल हवा बहने लगी।
सूर्योदय से पूर्व का प्रकाश अवनी की तरफ मंद गति कर रहा था। उसी प्रकाश में वह स्टेशन पर चलने लगी। स्टेशन के एक छोर पर एक पौधे के पास रुकी। उनके पर्णों पर स्थित ओस को देखने के लिए उसने बुर्का हटाया। उसी क्षण पूर्व में सूर्य की प्रथम कोमल किरण धरती पर प्रकट हुई।
अचानक उसने ओस को स्पर्श किया। एक ठंडी तरंग उसके तन में प्रवाहित हो गई। उसने पर्णों को झुकाकर अपनी हथेली में ऑस को भर लिया। कुछ क्षण वह हथेली में रही ऑस को देखती रही। उस पर परावर्तित हो रही कोमल सूर्य किरणें देखकर वह सहसा स्मित कर बैठी।
उसने हथेली की ऑस को अपने मस्तिष्क पर छिड़क दी। उसका मन शांत हो गया। मन के सारे मेल धूल गए।
"अभिनेत्री कोमल का स्वागत है।" वासुदेव ने उसके कंधे पर हाथ रख दिया।
ऑस से भीगी हथेली के पीछे कोमल ने अपना मुंह छिपा लिया। पूर्व आकाश लाल रंगों से भर गया।

-અસ્તુ-

[5] एक पहेली: सखी सहेली

“तुम भी वसुधारा जल प्रपात जा रहे हो?” एक युवती ने एक युवक से पूछा।
“हाँ। किन्तु आप...?”
युवक की बात काटते हुए युवती ने कहा, “तुमने मुझे आप संबोधन क्यूँ किया?”
“आयु में आप मुझसे कदाचित बड़ी हो सकती हो इसी लिए।”
“कदाचित छोटी भी हूँ सकती हूँ।”
“संभव है।” युवक ने शुष्क प्रतिभाव दिया।
“तेरी आयु कितनी है?”
“मुझे चोबिसवाँ वर्ष लग गया है, आपको?”
“अपरिचित युवती की आयु जानने की यह युक्ति मुझे भा गई। क्या नाम है तेरा?”
“मेरा नाम? आप अपनी आयु बता दो, मैं अपना नाम बताय दूंगा।”
“एक काम करते हैं। हम दोनों वसुधारा प्रपात ही जा रहे हैं। मार्ग में कोई अन्य साथी भी नहीं है। तो क्या हम साथ साथ चलें? वहाँ पहुंचने तक तुम मेरी आयु जान लेना और मैं तुम्हारा नाम जान लूँगी।”

“उससे क्या होगा?”
“छः किलोमीटर का यह मार्ग कट जाएगा और मार्ग में अकेलापन भी नहीं लगेगा।”
‘अर्थात अपने स्वार्थ के लिए एक लड़की एक लड़के का उपयोग करेगी?’ वह मन ही मन बोला।
युवती युवक के भावों को पढ़ने का प्रयास करते हुए देखती रही। युवक ने मार्ग पर एक दृष्टि डाली। पहाड़ पर विहंगम दृष्टि कर ली।
पूरे मार्ग पर कोई नहीं था। गगन में कई मेघ थे। सूरज उनमें से निकलता और लौटकर छिप जाता। किसी एक स्थिति पर स्थिर न रहा सका, चंचल सा सूर्य। युवक भी निश्चय न कर सका कि युवती के प्रस्ताव का स्वीकार करे या न करे।
“क्या सोच रहे हो? या आज कल के लड़कों में युवती दाक्षिण्य जैसा कुछ शेष बचा ही नहीं है?”
“युवती दाक्षिण्य नहीं, स्त्री दाक्षिण्य होता है। आप तो..।”
“दोनों एक ही तो होता है। वो सब छोड़। तू चल रहा है मेरे साथ या मैं अकेली ही इस निर्जन पहाड़ी मार्ग पर चलने लगूँ?” युवती चलने लगी।
युवक क्षण भर वहीं खड़ा रहा। दुविधा में रहा। युवती सौ से अधिक चरण आगे बढ़ चुकी थी। युवक ने उसे देखा और दुविधा को झटक दिया।
“रुको, मैं आ रहा हूँ।” युवती रुक गई। वह द्रुत गति से युवती के पास जा पहुंचा।
“हमारी बात पक्की?”
“कौन सी?” वह विचार में पड गया।
“वही, मुझे तुम्हारा नाम जान लेना होगा और तुम्हें मेरी आयु।”
“नाम तो लड़कियों के होते हैं। सुंदर और सब को पसंद आए ऐसे। लड़कों के नाम नहीं होते। इस लिए आप उस बंधन से मुक्त हो। हाँ, मैं आपकी आयु जानने का प्रयास करूंगा।”
“किन्तु यह तो एक तरफा बात हुई।”
“हमें स्त्री दाक्षिण्य, नहीं, लड़की दाक्षिण्य में सिखाया जाता है कि लड़कियों को मुक्त रखना। सभी दायित्व लड़कों के कंधों पर रखना।”
“वाह क्या लड़की दाक्षिण्य है! चल तेरी बात मैंने मान ली।”
युवती और युवक चलने लगे। माना गाँव से वसुधारा प्रपात का छः किलोमीटर का मार्ग कठिन तो है ही, उस दिन निर्जन भी था। केवल एक युवक, एक युवती के साथ उस मार्ग पर चल रहा था। दोनों एक दूसरे से अपरिचित, एक दूसरे से अज्ञात थे तथापि साथ साथ थे।

मेघों से निकलता रहता सूरज भी उनके साथ चलता था। चारों ओर उत्तुंग शिखरों पर हिम छाई हुई थी। जैसे सूर्य के प्रखर ताप से पहाड़ों को बचाने के लिए हिम स्वयं इन शिखरों का श्वेत वस्त्र बन गया हो!

कितनी ही महाकाय काली शिलाएं अडिग, अटल सी खड़ी थी। मार्ग पर चल रहे पथिक पर कड़ी दृष्टि रखते हुए खड़े प्रहरी जैसी शिलाएं।

ऐसी प्रहरी शिलाओं की दृष्टि के नीचे मार्ग पर युवक और युवती चलते जाते थे। युवती तो अपने बंधन से मुक्त हो गई थी। इस लिए वह मार्ग को, पहाड़ों को, शिलाओं को, मेघों को, गगन को, कहीं कहीं दिख रहे पक्षियों को, पहाड़ के श्वेत वस्त्रों को, किसी निर्झरी को और मार्ग की निर्जनता को भोगने लगी।

किन्तु युवक? वह तो पहेली सुलझाने में उलझ गया। मार्ग के सौन्दर्य को उसकी आँखें देख तो रही थी किन्तु उसका पान नहीं कर पाती थी।

थोड़ा मार्ग कटने के पर युवती रुकी।

“थोड़ा रुक जा। इन पत्थरों पर बैठकर थोड़ा विश्राम कर ले। मार्ग पर अविरत चलते रहने से थोड़े थोड़े अंतर पर विश्राम कर लेना ठीक होता है।" युवती पत्थर पर बैठ गई, झोली में से एक पुस्तक निकाली, खोली, कुछ गुनगुनाने लगी। युवक ने उसे ध्यान से सुना।

“कुछ कविता जैसा लग रहा है। किन्तु मन में गुनगुनाने के बदले..।”

युवती युवक के मन की बात जान चुकी हो ऐसे बोली, “मैं तो इन पहाड़ों को कविता सुना रही हूँ। तुझे नहीं सुननी हो तो कोई बात नहीं।”

युवती ने पूरी कविता सुनाई। युवक को कुछ भी समज नहीं आया। किन्तु पहाड़ की कठोर शिलाओं को कविता छु गई। उनका रौद्र रूप कोमल हो गया। युवक का ध्यान उस पर नहीं गया।

दोनों उठे, पुन: चलने लगे। युवक पहेली सुलझाने में व्यस्त हो गया।

‘इस पहेली का उत्तर पाने के लिए अभी तक जो कुछ पढ़ा हूँ उसे काम पर लगाना होगा।’

‘इससे चुटकी बजाते ही जान लूँगा कि इसकी आयु कितनी है और पश्चात मैं निश्चिंत होकर प्रकृति का आनंद ले सकूँगा।’

‘तो लग जा काम पर।’

‘कहाँ से प्रारंभ करूँ?’

‘उसके मुख को ध्यान से देख। एक अंक का अनुमान कर ले और बता दे लड़की को उसकी आयु।’

वह युवती के मुख को ध्यान से निहारने लगा।
‘बराबर। इसकी आयु इतनी ही होगी।’ उसने एक अंक का अनुमान लगा लिया।
“मेरी धारणा है कि आपकी आयु...।”
“लड़की की आयु किसी धारणा का विषय नहीं है।”
‘किन्तु..किन्तु।”
“किन्तु बिन्तु नहीं। धारणा भी नहीं। निश्चित उत्तर चाहिए।”
“ओह.।” युवक चुप हो गया।
‘अब क्या? कुछ नया सोचना पड़ेगा।’
‘उसके शरीर को, अंगों को देख। उनके विकास को देख। उसीसे उसकी आयु जान पाएगा।’
‘ठीक है।’
युवक उसके बालों को, गालों को, मुख को, छाती को, कमर को, पैरों को देखने लगा। निर्णय कर बोला, “आपकी आयु लगभग...।”
“लड़की की आयु भूगोल का विषय तो नहीं है।”
“क्यूँ भूगोल क्यूँ?”
“मेरे शरीर की भूगोल को ही तू देख रहा था न?”
“तो?”
“शरीर की भूगोल और धरती की भूगोल भिन्न भिन्न होती है।”
““कैसे?”
“धरती के पहाड़ों को देखा जा सकता है, उसका अनुभव किया जा सकता है। लड़की के पहाड़ पर आवरण होता है।
पहाड़ पर से बहते झरने, नदी, प्रपात भी देखे जा सकते हैं, नग्न आँखों से। लड़की के भीतर बहते झरने, नदी या प्रपात देख सके ऐसी आँखें ईश्वर ने कहाँ बनाई है?
धरती का तापमान मापा जा सकता है। किन्तु लड़की के तापमान को मापने का कोई यंत्र बना ही नहीं है। बन भी नहीं सकता।”
“तो भूगोल का अध्ययन व्यर्थ, यही न?"
युवक की बात पर युवती हंस पड़ी।
थोड़ा समय व्यतीत हो गया।
सहसा युवक बोला, “मैं दो चार प्रश्न पूछ सकता हूँ?”
“आयु के उपरांत कुछ भी पूछ। संकोच क्यूँ करता है?”

युवक ने गहन सांस ली।

“तो कहो कि आप कहाँ तक पढ़ी हैं?”

“स्नातक किया है।”

“कौन से वर्ष में?”

“वर्ष तो बता दूँ किन्तु उससे तेरा काम नहीं बनेगा।”

“क्यूँ? आप वर्ष बता दो, मैं तुरंत ही आयु बता दूंगा।”

“वो गिनती मिथ्या ही होगी।”

“क्यूँ?”

“मैंने इसी वर्ष स्नातक किया है।”

“तो आपकी आयु छः में पंद्रह मिलाने पर एककिस वर्ष। ठीक है न?”

“मिथ्या है।”

“क्यूँ? गिनती तो ठीक ही की है न?”

“गिनती तो ठीक ठीक की है किन्तु उत्तर मिथ्या है। लड़की की आयु गणित का विषय नहीं है।”

“क्यूँ ऐसा कह रही हो?”

“लड़की ने सतत अध्ययन किया है या रुक रुक कर? कितने वर्ष परीक्षा नहीं दी? कभी अनुत्तीर्ण भी रही हो सकती है। ऐसे मुद्दों पर ध्यान देना तेरा गणित चूक गया।”

“वह तो कैसे जानें?”

“गणित के सूत्रों की भांति जीवन के सूत्र सीधे सरल नहीं होते। इसी लिए तुम्हारा उत्तर मिथ्या हो गया।”

“तो गणित भी व्यर्थ?” युवक ने नि:श्वास छोड़ा। मौन हो गया।

दोनों चलते रहे। दोनों की पदध्वनि सुनाई देने लगी। मार्ग अधिक कट गया।

“क्यों चुपचाप है? कुछ बोलना नहीं है? कुछ पूछना नहीं है?” युवती ने मौन भंग किया।

“क्या बोलूँ? कुछ काम नहीं आ रहा।”

“निराश क्यूँ हो रहे हो? पुन: प्रयास कर ले।”

“ठीक है। मुझे सोचने दो।”

युवती कविता पढ़ने लगी। उसे रोकते हुए युवक बोला, “पिछले महीने आपने मतदान किया था?”

“वह तो मेरा दायित्व था।”

“आपने कितनी बार मतदान किया है?”

“कुछ स्मरण नहीं है।”

“आप मेरे साथ खेल खेल रही हो, ठीक है।” युवक के अधरों पर स्मित खेलने लगा।
“आपने प्रथम बार मतदान कब किया था?”
“लगभग पाँच वर्ष पूर्व।”
“तब आपने अठारह पूरे कर लिए थे। तो आज तेईस की होंगी आप। एक दो वर्ष आगे पीछे। तो...।”
“तो?”
“तो आपकी आयु पचीस वर्ष है।” युवक का आत्मविश्वास द्रढ था।
“मिथ्या।”
“किन्तु...।”
“लड़की की आयु नागरिक शास्त्र में थोड़ा पढ़ाया जाता है?”
“किन्तु उससे...।”
“कहा न, उत्तर मिथ्या है।”
“ओह..ह।” युवक थककर बैठ गया। इस बार युवती युवक के लिए रुकी। एक पत्थर पर बैठ गई। पहाड़ों को कविता सुनाने लगी।
दोनों पुन: चलने लगे। पहेली के उत्तर के लिए युवक का मन भी चलता रहा।
‘थोड़े थोड़े समय में थक जाती है। पुन: चलने लगती है। यह देखते हुए उसकी शारीरिक ऊर्जा त्वरित नष्ट हो जाती है और त्वरित नई जन्मती भी है। इस आधार पर इसकी आयु होगी...।”
“शरीर की ऊर्जा खर्च होना और नई जन्म लेना बायोलोजी का विषय है, मेरी आयु का नहीं/”
“तो वह भी मिथ्या?”
“बिल्कुल मिथ्या।” वह हंसने लगी। उसके हास्य की ध्वनि पहाड़ों में प्रतिघोषित होती रही।
“मैंने पढे इतने सारे विषय इतनी सी एक पहेली का समाधान नहीं दे सकते। मेरा सारा अध्ययन व्यर्थ हो गया।” अफसोस के साथ युवक मार्ग में ही बैठ गया।
“अरे, ऐसे कैसे बैठ गया? ध्यान देकर सुन। कोई ध्वनि तुझे सुनाई दे रही है?”
उसने किसी अज्ञात ध्वनि पर कान लगाए।
“हाँ, कुछ सुनाई दे रहा है। क्या है वह?”
“वह प्रपात की ध्वनि है। प्रपात अत्यंत निकट है।”
“किन्तु पहेली का उपाय तो दूर दूर छूट जा रहा है।” युवक के मन की बात प्रकट हो गई।
“हम अल्प समय में प्रपात तक पहुँच जाएंगे।”
“किन्तु समाधान तक कैसे पहुंचेंगे?”

“समय आने पर वहाँ भी पहुँच ही जाएंगे।”
दोनों चलने लगे। चलते चलते वह पहाड़ों से बातें करती रही।
“लो, आ गए प्रपात पर।” वह बोली। युवक ने नहीं सुना।
“सुनो, मैंने कहा, हम प्रपात पार आ गए।”
“आपने मुझसे कुछ कहा?”
“और किसको कहती?”
“अभी तो तुम पहाड़ों से बात कर रही थी।”
“अरे हाँ। वो तो..।” उसने बात अधूरी छोड़ दी।
युवक ने युवती से हटाकर अपना ध्यान प्रपात पर लगाया।
“कितना अद्भुत है यह प्रपात!” वह बोल उठा। युवती मौन होकर सौन्दर्य पान करने लगी।
“इतना अनुपम प्रपात मैंने कभी नहीं देखा। आपने देखा है?”
“शी...श।” युवती ने मौन रहने को कहा। वह मौन हो गया। प्रपात का आनंद लेने का प्रयास करने लगा। किन्तु भीतर वह पहेली अविरत पीड़ा दे रही थी। प्रपात का सौन्दर्य रस पीने नहीं दे रही थी।
कुछ समय पश्चात उसने देखा, “अरे, यह लड़की कहाँ चली गई? अभी तो यहीं थी।” चारों ओर खोजा किन्तु वह कहीं नहीं थी।
“ओ सखी, कहाँ है तू?” वह चीखा।
“सखी? तू? यह मैं क्या बोल गया?”
“कहाँ हो आप? कहाँ हो?” युवक का प्रश्न प्रपात के घोष में घुल गया, विलीन हो गया। वह एक शीला पर बैठ गया।
“ए...य लड़के। मुझे खोजने का प्रयास ना करना। मैं अब तेरे साथ नीचे लौटकर नहीं आऊँगी। वह यात्रा तुम्हें अकेले को ही करनी होगी।”
युवती के शब्द उसके कानों पर पड़े। उसे लगा कि युवती लौट आई है, कहीं समीप ही है। वह उठा। उसने उसे खोजा किन्तु वह वहाँ नहीं थी।
“कहाँ हो? प्रकट हो जाओ।”
“कहा न, मुझे मत खोजना। अब तुम अकेले ही लौटोगे।”
“मुझ अकेले को? क्यूँ?”
“कारण न पूछ। बस, मैं नहीं आऊँगी वह निश्चित है।”

“ओ..ह।” वह क्षण भर निराश हो गया। क्षण भर में स्वस्थ होकर बोला, “सुनो, प्रथम तो एक कठिन पहेली दे दी। उसका उपाय अभी मिला नहीं है। अब साथ भी छोड़ देना है? इस तरह एक नयी पहेली क्यूँ खड़ी कर रही हो? आप चाहती क्या हो?”

“साथ तो छूटना ही था। वैसे भी इस मार्ग पर तुम अकेले ही चले थे न? मैं तो अनायास ही मिल गई। तथापि तुम मेरे साथ कहाँ थे? तू तो पहेली को सुलझाने में ही व्यस्त था।”

“आपके कारण, आप ही के कारण पूरे मार्ग में मैं प्रकृति को भोग न सका।”

“तभी तो अब साथ नहीं आ रही हूँ। लौटते मार्ग पर तू अकेला ही है। भोग लेना मन भर इस हिमाद्रि को।”

युवक को कुछ नहीं सुझा। असमंजस में मौन हो गया।

“तुझे पहेली का समाधान जानना है न?”

“वह भी मेरे हाथ में कहाँ रहा है? सब आपकी इच्छा पर निर्भर है। आप ही तो अब तक सब कुछ निश्चय कर रही हैं।”

“मेरी इच्छा है तभी तो मैं तुम्हें वह बताने जा रही हूँ।”

युवक कुछ भी कहे बिना चारों तरफ देखता रहा।

“सुन, तेरी पहेली का उत्तर ..।”

“रुकिए, क्षण भर के लिए रुकिए।”

“क्यूँ? अब क्या हो गया?”

“आप कह रही हैं कि मेरी पहेली का उत्तर, हैं न? वह पहेली मेरी थी ही नहीं। पहेली तो तुमने रची थी। मैं तो बस उलझ गया उसमें।”

“चलो मान लेती हूँ कि वह पहेली मेरी रची हुई थी। तो उत्तर भी मैं ही देती हूँ न?” वह रुकी। ध्वनि की दिशा से एक शीतल लहर आकर युवक को स्पर्श कर गई। वह कंपित हो गया।

“मेरी पहेली का समाधान तूने पढे हुए सभी विषयों में नहीं मिलेगा। सभी पढ़ाई व्यर्थ। गणित, विज्ञान, नागरिकशास्त्र, अर्थशास्त्र, इतिहास ये सब व्यर्थ। सभी धारणाएं मिथ्या।”

“तो सार्थक क्या है? सत्य क्या है?”

“सार्थक? सत्य?” युवती का हास्य प्रस्फुट हुआ, प्रतिघोषित हुआ, शांत हो गया।

“सार्थक है भाषा। भाषा पढ़ी है तूमने?”

“हाँ।”

“कितनी भाषाएं पढ़ी हैं?”

“हिन्दी, गुजराती, अंग्रेजी, संस्कृत। कुल मिलाकर चार।”

“तो उन भाषाओं से काम क्यूँ नहीं लिया?”

“भाषा यहाँ किस काम आती?”

“भाषा ही तो बड़े काम आती है। भाषा से ही तुम मेरी आयु जान गए होते।”

“वह कैसे?”

“लड़की की आयु अर्थात एक वार्ता, एक कविता, एक गझल, एक उपन्यास, एक गीत, एक भजन, एक प्रार्थना, एक लौरी, एक छंद, एक मंत्र, एक सूक्त, एक नाटक। यदि तुम ये सब पढ़ पाते तो लड़की की आयु की पहेली अति सरल हो जाती। झट से उत्तर मिल जाता। ये सब भाषा ही तो बताती है, समजाति है।”

“क्या भाषा इतनी सशक्त होती है?”

“वही तो?”

“तो सिद्ध करके दिखाओ।”

“लड़की जब गीत गाती है, कविता बोलती है, गझल गुनगुनाती है, लौरी सुनाती है, प्रार्थना करती है, वार्ता या उपन्यास पढती है तब वह उनमें से मनोभावों को ग्रहण करती है, उन्हें आत्मसात करती है। उससे उसमें स्पंदन उत्पन्न होते हैं। वो स्पंदन ही लड़की की आयु।”

“किन्तु आप तो…?”

“मार्ग के प्रत्येक पड़ाव पर मैं कुछ बोलती थी। तुमने सुना था?”

“सुना तो था किन्तु समजा नहीं था।”

“कैसे समजता? तुमने पढ़ी हुई भाषाओं का उपयोग ही नहीं किया। यदि ऐसा किया होता तो प्रथम पड़ाव पर ही पहेली पहेली ही नहीं रहती।”

“तो यह कहो कि इस समय आप क्या बोल रही हैं? कोई वार्ता या कविता या?”

“इस समय इनमें से कुछ भी नहीं।”

“तो इस समय आपकी आयु क्या है?”

“लड़की जब इनमें से कुछ भी नहीं करती है तब वह लड़की नहीं होती, होती है केवल देह।”

“ओह। यह बात है?”

“बिल्कुल।”

“तो एक काम करोगी अभी?”

“कैसा काम?”

“अभी कोई कविता सुना सकती हो?”

“क्यूँ?”

“उस पर से मुझे आपकी आयु जाननी है।”
युवती ने एक कविता पढ़ी। युवक ने सुनी।
“मैं जान गया आपकी आयु।”
“कहे, कितनी है? मुझे भी जाननी है क्यूँ कि मैं भी नहीं जानती मेरी आयु।”
“नहीं। मैं नहीं बताऊँगा। तू ही जान ले स्वयं को, अपनी आयु को।”
युवक मौन हो गया। पहाड़ उतरने लगा।
युवती ने उसे पुकारा।
किन्तु?
किन्तु वह नहीं रुका।
सुना है आज भी वसुधारा प्रपात की ध्वनि में किसी युवती की कविता भी सुनाई देती है।

सम्पन्न
21/02/2024.

[6] आरी

“तू मुझे एक आरी लाकर देगा?” खालिदा ने योगेश से विनती की।

“आरी? क्यूँ?” योगेश हंसने लगा।

“ऐसे तुम मेरा उपहास मत करो। मैं अत्यंत गंभीर हूँ।”

“तो ठीक है, मैं भी गंभीर हो जाता हूँ। किन्तु तुझे आरी की क्या आवश्यकता आन पड़ी?”

“मुझे एक पेड़ पर आरी चलानी है।”

“पेड़ पर? उसने तेरा क्या बिगाड़ा है? सारे संसार को प्राणवायु मिलता रहे उसके लिए अधिक से अधिक पेड़ उगाना चाहिए और तुम पेड़ काटने की बात कर रही हो? क्यूँ जी?”

“क्यूँ कि एक पेड़ मेरा रक्त पी रहा है।”

“पेड़ रक्त पिता है? और वह भी तेरा?” योगेश पुन: हंसने जागा।

“तू क्या इस तरह मेरी सब बात पर हंसने लगता है?” खालिदा रूठ गई।

“ऐसे रूठना तुम्हें शोभा तो देता है किन्तु अभी रूठना नहीं है।”

“तू मेरी बात पर हँसता रहे तो मैं रूठूँ नहीं तो क्या करूँ?”

“तू बात ही ऐसी कर रही है कि कोई भी बिना हँसे नहीं रह सकता। छोड़ो उसे और कहो कि बात क्या है?”

“पिछ्ले आठ दिनों से एक पेड़ मेरे सपने में आता है।”

“तो तुम्हें दिन में भी सपने आते हैं?”

“हाँ।” खालिदा ने रूखा उत्तर दिया।

“और रात्रि में?”

“रात्रि में भी आते हैं सपने।”

“ओह। तुझे उसे काटना क्यूँ है?”

“एक बार काट ही डालूँ। पश्चात तो वह सपने में नहीं आएगा न? तब मैं निश्चिंत हो कर सो पाऊँगी न?”

“एक पेड़ सपने में आया उसमें इतनी चिंतित क्यूँ है? तू उसकी अवगणना कर।”

“कर चुकी हूँ, योगेश। तू वह सब छोड और मुझे आरी दे दे न।” खालिदा चिड गई।

“ऐसे चिड़ना नहीं है, प्रिये।”

“ठीक है, नहीं चिड़ूँगी। बस?” खालिदा ने मुख पर कृत्रिम हास्य प्रकट किया। “किन्तु तुम मुझे आरी दे रहे हो न?”

“ना। नहीं देने वाला हूँ मैं।”

“क्यूँ?”

“तुम भी पागल हो, खालिदा। तू सपने के पेड़ को काटने के लिए वास्तविक आरी मांग रही है?”

“तो क्या करूँ? कैसे उस पेड़ से जान छुड़ाऊँ? तू ही कोई उपाय बता अब।”

“अब जब सपने में पेड़ आए तब तू आरी भी सपने में ही मांग लेना। उसीसे उस पेड़ को काट डालना। कट जाने के पश्चात वह तेरे सपने में नहीं आएगा। है न कितना सरल?”

“ठीक है, ऐसा ही करूंगी।” खालिदा रसोई में चली गई, जाते जाते योगेश की तरफ कुछ विचित्र मुद्रा बनाती गई। उसे देखकर योगेश पुनः हंस पड़ा।

तीन दिन बित गए।

“खालिदा, तूने उस पेड़ को काट डाला न? अब तो वह सपने में नहीं आता न?”

खालिदा ने योगेश की तरफ एक दृष्टिपात किया और दृष्टि घुमा ली।

“तुमने कोई प्रतिभाव नहीं दिया, खालिदा?”

“जिसे पत्नी की समस्या के उपाय में रुचि ही नहीं हो उसे क्या उत्तर दूँ?”

“अर्थात पत्नी रुष गई है और पति को उसे मनाना है। यही न?” योगेश ने स्मित दिया।

खालिदा ने पलकों से सम्मति प्रदान की।

“तो ठीक है, पत्नी जी, कहो कि पेड़ का क्या हुआ?”

“अभी भी सपने में आकर सताता है।”

“निश्चय ही वह तुम्हारा पिछले जन्म का प्रेमी रहा होगा।”

“पिछले जन्म को छोड़ और इस जन्म की, इस समस्या की बात कर।”

“तो क्या किया जाए उसका?”

“मुझे वह आरी दे दे। देखना, मैं हूँ, आरी है और वह पेड़ है।”

“वह आरी? तू किस आरी की बात कर रही है?”

“अटारी पर संभालकर रखी है वही आरी।”

खालिदा ने अटारी की ओर संकेत किया जहां एक झोली में आरी और अन्य ओजार पड़े थे।

“ओह। वह आरी?” योगेश बोला और एक महीने पूर्व की घटना का उसे स्मरण हो आया।

रविवार का दिन अभी प्रारंभ ही हुआ था। सारी वसाहत आलस में डूबी हुई थी। खालिदा अभी जागी नहीं थी। किन्तु दैनिक क्रम से योगेश जग चुका था। खालिदा को विक्षेप ना हो इस लिए बासी समाचार लेकर आए नवीन समाचार पत्र को लेकर वह आँगन में कोमल सूर्य के साये में बैठ गया। अभी प्रथम पृष्ठ पर छपे मुख्य समाचार पर विहंग दृष्टि डाली ही होगी तभी एक कारीगर की ध्वनि सुनाई दी।

“सुथारी का..म। किसी को सुथारी काम करवाना हो तो बोलो। सुथारी काम वाला आया, सुथारी का....म।” वह बोलता जा रहा था और सायकल की घंटी बजाता जाता था।

इतनी शांत प्रभात में उसकी ध्वनि से योगेश चीड़ गया।

“इतनी नीरव और सुस्त प्रभात में इतनी कर्कश ध्वनि! इतनी प्रभात के समय इसे वसाहत में आने ही क्यों दिया?"

उसने सुथार पर एक दृष्टि डाली और दूसरी दृष्टि से चौकीदार को खोजने लगा। चौकीदार तो कहीं नहीं दिखा किन्तु सुथार की कर्कश ध्वनि उसके कानों में बलात घुसती रही।

“सुथारी काम। सुथारी काम करा लो।”

बोलते बोलते वह वसाहत के पीछे के भाग में चला गया।

‘सुथारी काम!’ योगेश के मन में एक प्रकाश हुआ।

‘घर के छोटे मोटे कई काम कुछ समय से अटके पड़े हैं। सुथार को कई बार बोला है किन्तु भाव खा रहा है। ‘आज आया और कल आया’ हर बार कहता है किन्तु न तो उसकी आज आती है न कल। ऐसे ही कितने महीने बीत गए। बड़े कारीगर छोटे छोटे कामों को लटकाकर ही रखते हैं।’

‘एक काम करता हूँ। यह सुथार पीछे से लौटेगा तो उसे बुलाकर छोटे छोटे काम करवा लेता हूँ। खालिदा भी प्रसन्न हो जाएगी। बस आने दे अब वह सुथार को।’

थोड़े समय में सुथार लौटा। अपने साथ वही कर्कश ध्वनि भी लाया।

“ओ भाई, जरा यहाँ आना।” योगेश का आमंत्रण मिलते ही सुथार घर पर आ गया।

“देखो भैया, थोड़े छोटे मोटे काम हैं। आप कर दोगे?”

“हाँ साहब। मुझे बता दो।”

योगेश ने सारे काम बता दिए, समझा दिए। मूल्य भी निश्चित कर लिए गए।

“तो कब से काम प्रारंभ करोगे?”

“माल सामान लाने के लिए पैसे दो तो मैं सब सामान लाकर काम चालू कर देता हूँ।”

योगेश ने उसे पैसे दिए।

“साहब। ये मेरे साधन हैं। इसे यहीं रखिए। मैं अभी माल सामान लेकर आता हूँ।” वह चला गया।

‘आज तो खालिदा प्रसन्न हो जाएगी। अभी कारीगर आएगा और काम चालू कर देगा। उसकी ध्वनि से वह जागेगी तो उसे सुखद आश्चर्य होगा। कई महीनों से ताने मार रही थी वह भी आज बंद हो जाएंगे।’ योगेश कोई मधुर गीत गुनगुनाने लगा।

समय चलने लगा। खालिदा जाग गई।

“आज प्रभात में ही अत्यंत प्रसन्न दिख रहे हो। कोई अच्छे समाचार छपे हैं आज के समाचार पत्र में?”

“बस थोड़ी प्रतीक्षा कर। तू भी प्रसन्न हो जाएगी।”

“थोड़ी प्रतीक्षा अर्थात कितनी प्रतीक्षा?”

“थोड़ी अर्थात थोड़ी।”

“तथापि कितनी?”

“थोड़ी प्रतीक्षा अर्थात कितनी प्रतीक्षा वह तो किसी शिक्षक ने आज तक नहीं सिखाया।”

“ठीक है। तुम्हारी थोड़ी प्रतीक्षा पूर्ण हो जाए तब मुझे बताना। तब तक मैं अपना काम करने जा सकती हूँ?”

“अरे, बैठ न। ऐसे साथ बैठकर शांति से एक दूसरे का सहवास भोगने का अवसर बड़ी कठिनाई से प्राप्त होता है।” योगेश के आग्रह पर खालिदा उसके निकट बैठ गई। प्रभात की मदभरी धूप का आनंद लेने लगे। दोनों ने कितनी ही बातें की। उन दोनों की गोष्ठी में समय चुपचाप सरक गया ऐसा जब खालिदा ने जाना तो वह कृत्रिम क्रोध करती हुई उठ गई।

“तेरी इस थोड़ी सी प्रतीक्षा में कितना समय हो गया, जानता है तू? अब तो बता दे कि इतना प्रसन्न क्यूँ है?”

“ओह। समय तो अधिक हो गया किन्तु वह अभी तक आया क्यों नहीं?” योगेश ने भीत पर लटकी हुई घड़ी को देखा।

“तो तू किसी की प्रतीक्षा कर रहा है?”

“हाँ।”

“कौन है वह? कोई विशेष है क्या?”

योगेश ने प्रतीक्षा भरी एक दृष्टि वसाहत के द्वार तक खींची। वहाँ कोई नहीं था।

“अब तक तो उसे आ जाना चाहिए था। क्यों नहीं आया होगा?”

“किसकी प्रतीक्षा है, योगेश? बता दे न?” खालिदा अब अधीर हो गई।

“एक कारीगर, सुथार की प्रतीक्षा कर रहा हूँ।” योगेश ने पूरी बात खालिदा से कही।

“वह तो गया तेरे पैसे लेकर। अब वह आनेवाला नहीं।”

“नहीं, नहीं। ऐसा नहीं है। वह अवश्य लौटकर आएगा।”

“इतना विश्वास? वाह। इस विश्वास का कोई विशेष कारण?”

“वह अपने औजार का झोला यहीं छोड़कर गया है। इसलिए वह अवश्य आएगा। ये साधन उसकी आजीविका है। कोई कारीगर अपनी आजीविका छोड़ कर जाता है तब अवश्य लौटकर आता ही है।”

खालिदा और योगेश उसके आने की प्रतीक्षा करते रहे किन्तु वह नहीं आया।

“योगेश, तीन दिन बीत गए परंतु वह कारीगर गया सो गया। पैसा लेकर उसकी मनसा भ्रष्ट हो गई लगती है। ये लोगों का कोई भरोसा नहीं होता।”

“किन्तु वह अपने साधन यहाँ छोड़ गया है तो आएगा ही।”

“इतने रुपयों से तो वह नए साधन खरीद लेगा। अब यह पुराने साधन लेने क्यों आएगा? आप पुरुष लोग भी अपरिचित किसी भी व्यक्ति का बिना सोचे समझे विश्वास कर लेते हो। उसका ही यह परिणाम है।”

खालिदा की कटाक्ष वाणी सुनकर योगेश को विचार आ गया कि ‘खालिदा, तुम भी तो अपरिचित ही थी। विश्वास किया है न तुम पर?’ किन्तु वह मौन ही रहा।

थोड़ा विचार कर वह बोला, “एक काम करता हूँ। कल सुबह चौराहे पर चला जाऊंगा। वहाँ सभी कारीगर काम की अपेक्षा में खड़े रहते हैं। यह सुथार भी वहीं खड़ा होगा। वह वहीं मिल जाएगा। उसे उसके साधन लौटा दूंगा और हमारे पैसे मांग लूँगा।”

“विचार तो सुंदर है किन्तु वह पैसा देने को तैयार नहीं हुआ तो?”

“तो? तो मैं नहीं जानता कि मैं क्या करूंगा। अभी तो चलो सो जाते हैं।”

भोर होते ही योगेश औजार का झोला लेकर चौराहे पर गया।

“बोलो साहब, क्या काम करवाना है? काम कोई भी हो, हो जाएगा। हमारे पास सभी काम के कारीगर हैं। बस आप बोलो। सब काम हो जाएंगे।”

कुछ लोगों ने आकर योगेश से कहा। उसने उन बातों पर ध्यान नहीं दिया।

“साहब, काम बिल्कुल अच्छा होगा। आप खर्च की चिंता ना करें, आपके बजेट में ही, अल्प खर्च में काम कर देंगे।” उसने पुन: योगेश से आग्रह किया।

“काम क्या करवाना है?” अन्य ने पूछा।

“मुझे कोई काम नहीं करवाना है।”

योगेश के शब्द सुन उनकी आँखों में प्रश्न उभर आए। योगेश ने उन्हें पढ़ा और समझा भी।

“यहाँ मैं एक सुथार की खोज में हूँ।”

“कोई विशेष कारीगर है? क्या नाम है उसका?”

“हाँ, है तो विशेष किन्तु मैं उसका नाम नहीं जानता। मैं तो यह भी नहीं जानता कि वह सदैव यहाँ आता भी है या नहीं?”

“ऐसा कैसा? ऐसे तो उसे आप कैसे खोज पाओगे?”

“उसका मुख मुझे पक्का स्मरण है। यदि वह सामने आए तो मैं शीघ्र ही उसे पहचान लूँगा। क्या आप मुझे सुथारी काम के कारीगरों से मिला सकते हो?”

उसने संकेत किया। योगेश उसके पीछे पीछे चलने लगा। एक दल के पास वह रुका।

“सभी सुथार भाइयों, यहाँ आ जाओ।” क्षण भर में ही दस बार लोग आ गए।

“लो साहब, सब आ गए। यहाँ इतने ही सुथार हैं। पहचान लो इनमें से उसे।”

योगेश ने सब को देखा। सब के मुख ध्यान से देखे।

“नहीं, इनमें से कोई नहीं है।”

“साहब, एक बात पूछूँ?”

“हाँ, हाँ। पूछो।”

“आपको विशेष वही कारीगर क्यों चाहिए?”

योगेश ने प्रश्न पूछने वाले व्यक्ति के मुख के निर्दोष भावों को देखा। उसे विश्वास हो गया कि इस व्यक्ति से बात कर सकता हूँ।

“वह व्यक्ति मेरे घर काम के लिये आया था। वह अपने साधन मेरे घर भूल गया है। मुझे उसे वह सब लौटाने हैं। बिना औजार के वह काम कैसे कर पाएगा?”

“कहाँ है वह साधन? साथ लाए हो?”

“हाँ, मेरे साथ ही है।” योगेश ने साधन निकले और कहा, “ये रहे।”

“मैं देखूँ तो?” योगेश ने उसे साधन दिए। उसने उसे ध्यान से देखा।

“नहीं। इन साधनों वाला सुथार यहाँ नहीं आता। संभव है वह किसी अन्य स्थान से आया हो आपके घर।”

“साधन देखकर आप कारीगर को पहचान जाते हो?”

“साधनों पर यहाँ के कारीगरों के नाम का कोई न कोई चिह्न होता है। उससे कारीगर को पहचान लेते हैं। किन्तु..।”

“किन्तु? क्या?”

“इन औजारों पर ऐसा कोई चिह्न नहीं है। इसका अर्थ है कि इन साधनोंवाला कारीगर इस क्षेत्र का नहीं है।”

योगेश ने एक छोटा सा नि:श्वास छोड़ा।

“क्या हुआ साहब? वह कारीगर काम तो पूरा करके गया है न? आपने उसे पैसे बैसे तो नहीं दिए हैं न?”

योगेश क्षणभर चुप रहा। पश्चात उसे एक स्मित देकर घर लौट आया।

“योगेश, वह अब नहीं आएगा। इतने समय के पश्चात वह भूल भी गया होगा कि उसने किसके घर से पैसे लिए थे और यह आरी और अन्य साधन कहाँ छोड़ गया था। इस लिए कहती हूँ कि वह आरी मुझे दे दे।” खालिदा ने योगेश को विचारों से वर्तमान में ला दिया।

योगेश जागृत हो गया। एक गहन सांस लेते हुए बोला, “वह आरी तो मैं तुम्हें दे दूंगा किन्तु यह तो बता कि वह पेड़ कहाँ है?”

“मैं क्या जानूँ?”

“क्या? तुम नहीं जानती कि वह पेड़ कहाँ है?”

“नहीं जानती।”

“तो आरी लेकर किसे काटोगी? तुम भी न, खालिदा, बड़ी वो हो।”

“वो? वो क्या हूँ मैं?”

“वो फिर कभी बताऊँगा। सबसे प्रथम हमें उस पेड़ को ढूँढना होगा। एक बार पेड़ मिल जाए तो इस आरी लेकर हम दोनों वहाँ जाएंगे और काट डालेंगे।”

“उस पेड़ को कहाँ ढूँढेंगे? कैसे खोजेंगे उसे?”

“हाँ, यह भी तो है एक समस्या।” योगेश उपाय सोचने लगा। खालिदा मौन रहकर योगेश को उपाय खोजने में सहाय करने लगी।

“उसका उपाय तो तुम्हारे सपने को ही देना पड़ेगा, खालिदा।”

“मैं कुछ समझी नहीं।”

“सुनो, आज रात्रि को सपने में वह पेड़ आए तो उसे पूछ लेना कि तू है कहाँ? पूरा पूरा ठाम ठिकाना ले लेना। और यह भी बता देना कि आरी लेकर तुझे काटने के लिये हम आएंगे।”

“तू उपहास कर रहा है मेरा?”

“नहीं, खालिदा। पेड़ तक पहुंचने के लिए पेड़ का स्थान तो जानना पड़ेगा ना? और वह केवल तुम्हारा सपना ही बता सकता है।”

“कैसे?”

“हं..। एक काम हो सकता है। स्वप्न में आज तुम उस पेड़ को देखो तब साथ साथ उसके आस पास भी देखना कि वहाँ क्या क्या है? उन संकेतों के आधार पर हम उस पेड़ को खोज निकालेंगे।”

“प्रयास करूंगी।”

दूसरे दिन खालिदा ने कहा, “चल, पेड़ के पास चलते हैं। मैं जानती हूँ कि वह कहाँ होगा।”

योगेश और खालिदा बाइक पर निकल पड़े उस पेड़ के होने की संभावनावाले संकेतों की दिशा में।

“यह प्रभात की ठंडी पवन कितनी रोमांचकारी है? तेरे बालों की उड़ती लट जब मुझे स्पर्श करती है तब मेरे भीतर एक हरा भरा पेड़ उग निकलता है। मुझे तो लगता है कि हरे भरे उस पेड़ के नीचे हम कोई रंगीन गीत गाएंगे और मन भर नाचेंगे भी।”

“तेरी इन भावनाओं को अभी संभाल के रख।”

“क्यों? आज तो थोड़ा...?”

“वह पेड़ सूखा है, शुष्क है। उसकी डालियों पर पर्ण नहीं है। उसकी चमड़ी पूरी तरह से रूखी है। वह एक ठूँठा है। वहाँ जाकर, उसे देखकर तू सारा प्रणय भूल जाएगा, योगेश।”

“ओह।” एक उष्ण सांस खालिदा को स्पर्श करता हुआ बह गया। ठंडी प्रभात की शेष यात्रा भी शुष्क हो गई।

“बस, आगे से बाँये मूड़ जाना।”

मुड़ते ही एक ठूँठा पेड़ दिखाई दिया।

“क्या यह वही पेड़ है?”

“दिख तो वही रहा है तथापि दो तीन संकेतों को जांच लूँ तभी कह सकूँगी।”

योगेश ने बाइक रोक ली।

“कौन कौन से संकेत हैं?”

“एक तो आस पास के सभी पेड़ हरे भरे हैं। केवल यही के पेड़ सूखा है।”

“हाँ, ऐसा ही दिख रहा है। और क्या है?”

“दूर एक छोटी सी पहाड़ी है। और उस पर अति क्षीण धारा से एक झरना बह रहा है।”

योगेश दूर दूर देखने लगा, “एक पहाड़ी तो दिख रही है।” योगेश ने पेड़ की पिछे की दिशा में संकेत किया।

“वहाँ देखो, खालिदा। एक पहाड़ी दिख रही है। क्या वह पहाड़ी यही है?”

“हो सकती है। क्या उसमें कोई झरना बह रहा है?”

“झरने की धारा तो क्षीण बताई थी न तुमने? तो इतने अंतर से कैसे दिखेगी? चल, समीप जाकर देखते हैं।”

दोनों पहाड़ी की तरफ चलने लगे।

“खालिदा, यहाँ तो हरियाली है। थोड़े पुष्प भी हैं।”

“तो? क्या विचार है आपका श्रीमान जी?”

“थोड़ा सा प्रणय करने का।”

“ओह, यह बात है?” खालिदा ने योगेश का हाथ पकड़ लिया। एक छोटा सा झरना बहने लगा।

“वो रहा झरना। तुझे दिख रहा है?”

“दिखता भी है, अनुभाव भी हो रहा है।” योगेश के शब्द सुन खालिदा स्त्री सहज लज्जा युक्त हंसी।

“चलो, यह तो निश्चय हो गया कि वो सुखा पेड़ ही तेरे स्वप्न का पेड़ है।”

दोनों उस शुष्क पेड़ के समीप आ गए।

“खालिदा, यह रहा तेरे स्वप्न का पेड़ और यह रही वास्तविक आरी। जा, चला दे उस पर यह आरी।”

योगेश की बात पर खालिदा का ध्यान न था। वह तो बस अनिमेष दृष्टि से पेड़ को ही निहार रही थी। उसके मन में अनेक विचार चल रहे थे।

‘किसी एक पेड़ को उसके शुष्क होने के कारण ही काटा जाएगा? इतने दिनों से मुझे स्वप्न में दिख रहा यह पेड़ कोई संकेत तो नहीं दे रहा? कोई पेड़ स्वयं कट जाने के लिए तो मेरे स्वप्न में प्रति रात्रि नहीं आता। कोई अपनी हत्या कराने का इस प्रकार आमंत्रण थोड़ा देता है? यह पेड़ निश्चय ही मुझ से कोई कार्य कराना चाहता है। किन्तु, क्या हो सकता है वह कार्य?’

“खालिदा, चला आरी और काट डाल इस पेड़ को। अपने हाथ से ही तू यह कार्य कर दे तो यह तेरे सपने में आना बंद कर देगा।”

खालिदा ने कोई प्रतिक्रिया नहीं दी।

“तू काटती है या मैं काट डालूँ?” पेड़ काटने के लिए योगेश आरी के साथ पेड़ की तरफ बढ़ा। उसने पेड़ पर आरी रख दी और उसे चलाने लगा।

“नहीं। उस पेड़ को न काटो।” खालिदा को उच्च स्वर से ये शब्द सुनाई पड़े। उसने आस पास देखा। कोई नहीं दिखा।

“किसका स्वर होगा यह? जिसका भी हो, मुझे योगेश को रोकना होगा।”

खालिदा योगेश के पास दौड़ गई। उसका हाथ पकड़ लिया।

“मत काटना इस पेड़ को।” वह चीखी। योगेश रुक गया।

“उस पेड़ को काटना मत।” पुन: एक स्वर गुंजा। उसमें करुणा थी। दोनों ने उस ध्वनि की तरफ देखा। एक मलिन दिनहीन व्यक्ति हाथ जोड़ प्रत्यक्ष खड़ा था।

“इस पेड़ को काटना मत। किसी भी पेड़ को ना काटना।” उसके स्वर में आर्तनाद था।

“तुम कौन हो भाई? तुम इसे काटने से क्यों रोक रहे हो?” खालिदा ने पूछा।

“मैं तो…।”

“अरे! यह तो वही कारीगर है जिसकी यह आरी है। यह आरी तेरी ही है न?” योगेश ने बात प्रारंभ कर दी।

उसने आरी को देखते ही कहा, “हाँ, यह मेरी ही आरी है।”

योगेश की आँख में क्रोध उतर आया।

“और आपसे पैसा भी मैं ही लेकर गया था।”

“कहाँ था इतने दिनों तक?” योगेश का क्रोध बढ़ गया। कारीगर भय से कांपने लगा।

“शांत हो जा, योगेश।” खालिदा ने योगेश को देखा। उसकी आँखों को पढ़कर योगेश चुप हो गया।

“भाई, पानी पीओगे?” खालिदा ने कारीगर को पानी धर दिया। वह एक ही सांस में पानी पी गया।

“साहब, मैं आपका…।”

कारीगर आगे कुछ भी बोले उससे पूर्व खालिदा ने उसे रोका।

“यह लो, आपकी आरी, और यह लो बाकी के साधन। जाओ काम पर लग जाओ। कितने दिनों से काम पर नहीं गए हो आप? चलो आज से ही काम पर लग जाओ।”

खालिदा ने आरी और बाकी औजार उसे सौंप दिए।

“मैं आपके घर आऊँगा। सभी काम पूरे कर दूंगा।” जाते जाते वह बोला।

खालिदा ने उसे सस्मित विदा किया। जब तक दिख रहा था, उसे जाते हुए वह देखती रही। योगेश खालिदा को देखता रहा।

“तूने उसे ऐसे ही क्यों जाने दिया? तू जानती है कि वह हमारे पैसे लेकर चला गया था। वे पैसे तो उससे मांग लेती?”

“योगेश, थोड़े से पैसों के बदले जो व्यक्ति अपनी आजीविका के साधन छोड़ जाए वह व्यक्ति कितना विवश होगा? अवश्य ही कोई जीवन मृत्यु का प्रश्न होगा। उसके पास साधन होंगे तो, औजार होंगे तो ही वह धन अर्जित कर पाएगा। काम नहीं करेगा तो जिएगा कैसे?”

“तो यह तो पूछना था कि ऐसी तो कैसी विवशता थी?”

“उस विवशता के विषय में पूछती तो वह और विवश हो जाता। उसे कितना विवश कराऊँ मैं? जो दु:ख वह भूल गया होगा उसे स्मरण कराती तो वह अधिक दु:खी होता।”

“हाँ खालिदा। तुम सत्य कह रही हो। चलो घर चलें अब?”

***

प्रभात का सूरज पूर्व के व्योम को रंगों से भर देने को अधीर था। खालिदा सूर्योदय की उन क्षणों को भोगने को उत्सुक थी। तभी योगेश ने आकर कहा, “आज तो स्वप्न में वह शुष्क पेड़ तो नहीं आया न? अब तुझे शांति मिली होगी।”

“आज भी आया था। ऐसे वह कोई पीछा छोड़नेवाला नहीं है।”

“वह आज भी आया तथापि तुम प्रसन्न हो?”

“हाँ हूँ।” खालिदा ने अपने नयनों के कटाक्ष से योगेश को बिंध डाला।

“क्यों? कुछ तो बात है प्रिये!”

“हाँ प्रियतम, है। आज भी सपने में आया था वह। उस पेड़ में एक कोमल हरी पंखुड़ी उग निकली थी। तू कल्पना करके बता कि वह पंखुड़ी कहाँ से उग निकली होगी?”

“सब से ऊपर किसी सुखी डाली पर उगी होगी।”

“तूने ध्यान से देखा था कि जहां तूने आरी चलाई थी वहाँ एक छोटा सा घाव पड गया था?”

“क्या उस घाव में?”

खालिदा ने लज्जा से मुख ढँकते हुए स्मित किया। योगेश ने उसमें उठती तरंगों को अनुभव किया।

“किन्तु ऐसा कैसे हो सकता है? वह पेड़ तो पूरा सूखा था?”

“शुष्क पेड़ की सुखी चमड़ी के नीचे हरे पेड़ों की अनेक संभावनाएं सदा से जीवित होती है, योगेश।”

योगेश कुछ भी नहीं बोल पाया। कोई पंखी उड़कर घर की अटारी पर बैठ गया। खालिदा ने उसकी तरफ हाथ बढ़ाया। उसने अपने कंठ से कलरव किया। पीछे उसके सूर्य अपनी कोमल किरणों से धरती को उज्जवल करने लगा।

[7] 23 अक्टूबर

मेरी आँखों के ठीक सम्मुख आकर वह खड़ा हो गया। उसने मेरी आँखों के प्रश्नों को पढ़ लिया था। उसने संकेत से मुझे अपने पीछे आने को कहा।

कुछ पूछने के लिए मैंने अपने अधरों को खोलने का प्रयास किया तो उसने अपनी अंगुली अपने ही अधरों पर रख दी। मैं मौन हो गई। कुछ भी सोचे बिना मैं उसका अनुसरण करने लगी।

हम एक विशाल कक्ष में प्रवेश कर चुके थे। मैं उसे निहारने लगी। तैयार वस्त्रों का अर्ध विकसित एक विशाल प्रदर्शन कक्ष था वह। जहां दृष्टि जाती वहाँ वर्तमान प्रवाह के वस्त्र स्वयं को प्रस्तुत कर रहे थे। मैं उन्हें देखती रही। मेरी दृष्टि में कौतुक था, प्रश्न भी थे।

विशाल कक्ष के वातावरण के अनुकूल बनती उससे पूर्व ही उसने मुझे दूर पड़ी कुर्सी पर बैठने का संकेत किया। मैं यंत्रवत बैठ गई। मेरी आँखों में जन्मा कौतुक विस्तृत होता जाता था। मैं पुन: उस खंड को निहारने लगी।

कुछ ही क्षण व्यतीत हुए होंगे तभी नींबू रस लेकर वह उपस्थित हो गया। उसके नयनों में मधुर सा एक स्मित उग गया।

अज्ञात नगर में, अज्ञात खंड में, अज्ञात युवक के हाथ का नींबू रस पीऊँ या नहीं उस दुविधा में मैं पड गई। उसने आँखों से आग्रह किया। मैंने नींबू रस अपने हाथ में ले लिया। नींबू रस देते ही वह अदृश्य हो गया।

मैं अभी भी दुविधा में थी इसलिए रस के उस पात्र को होंठों पर रखे बिना ही हाथ में पकड़ रखा था। उसे अपने अधरों पर रखूं उससे पूर्व वह पुन: प्रकट हो गया। उसके हाथ में एक डायरी थी। साथ में एक चिट भी।

उसने दोनों मुझे धर दी। उसके खींचे हुए हाथ में स्थित चिट पर लिखा था।

‘लोगों से पूछे हुए और जिनके उत्तर नहीं मिले हैं ऐसे सभी प्रश्नों के उत्तर मेरी इस डायरी में हैं। यहाँ बैठकर सुख से इसे पढ़ लो।’

उन शब्दों ने मुझे उत्सुक कर दिया। एक ही घूंट में रस पी गई। पात्र बाजू पर रखकर उसके हाथ से डायरी ले ली। चिट नीचे गिर गई। वह पुन: अदृश्य हो गया।

डायरी का पृष्ठ खोलने ही जा रही थी तभी मेरे अंतर्मन ने मुझे रोका।

‘क्यों मैं उसके आदेशों को मान रही हूँ? किसी की अंगत डायरी मुझे क्यों पढ़नी चाहिए?’

डायरी खोलने का विचार मैंने त्याग दिया। डायरी वहीं रखकर उस खंड से भाग जाने के लिए मैं उठी। डायरी को वहीं रख दूँ उससे पूर्व ही मेरी दृष्टि उस चिट पर पड़ी। उसमें लिखे शब्द मैं पुन: मन में पढ़ गई।

‘लोगों से पूछे हुए और जिनके उत्तर नहीं मिले हैं ऐसे सभी प्रश्नों के उत्तर मेरी इस डायरी में हैं। यहाँ बैठकर सुख से इसे पढ़ लो।’

‘मेरे प्रश्न? उनके उत्तर? कौन से प्रश्नों के उत्तर मैं खोज रही थी?’

पिछली पाँच सात मिनिट में हुई घटनाएं मेरे मन पर ऐसी छा गई थी कि मैं यहाँ क्यों आई थी वह भी विसार गई। मैंने वह सब स्मरण करने का प्रयास किया सब स्मरण आने लगा, धीरे धीरे।

कुछ दिनों पूर्व मैं अपने व्यक्तिगत काम से इस नगर में प्रथम बार ही आई थी। साँझ होते ही काम पूर्ण कर मैं निकल पड़ी थी इस नगर को देखने, समजने और भोगने को।

होटल से थोड़ी दूरी तक मैं चल चुकी थी। सूर्य की ज्योति अस्त होने और नगर का प्रकाश उदय होने जा रहा था।

यूं ही निरुद्देश्य चलते चलते मेरी दृष्टि एक भवन पर अटक गई। वह एक पुस्तकालय था। अनायास ही मैं उसकी तरफ खींची चली गई। भीतर प्रवेश कर गई।

असंख्य पुस्तकों से भरे पुस्तकालय को देखकर मैं तो स्तब्ध हो गई। इतनी सारी पुस्तकें ! एक एक करके उन पुस्तकों को मैं निहारती रही, प्रसन्न होती रही।

मैंने पुस्तकालय के सारे खंड पर दृष्टि डाली। लगभग पूरा खाली था। दूर कोने में एक युवक बैठा था।

मुझे भीतर प्रवेश करते देख उसने मुझे एक मधुर स्मित दिया। मैंने भी उत्तर में स्मित दिया। उसकी आँखों में आवकार था। मेरी आँखों में प्रसन्नता थी। दोनों ने कुछ भी बोले बिना ही एक दूसरे के भावों को परख लिए।

उसके मधुर आवकार ने मुझे प्रेरित किया और मैं समग्र पुस्तकालय में घूमने लगी। एक अज्ञात नगर में इतनी सारी पुस्तकें ! जैसे मुझे कोई परिचित मित्र, परिचित सखी मिल गई हो वैसे मैं रोमांचित हो गई। मैंने अच्छा समय बिताया वहाँ।

‘इस नगर में अभी तो बार बार आना होगा। प्रत्येक बार समय मिलते ही मैं यहाँ आ जाऊँगी और इन मित्रों के साथ आनंद प्राप्त करूंगी।’ स्वयं को एक वचन देकर मैं वहाँ से निकली, नगर से भी।

उस घटना को, उस मिलन को डेढ़ महीना बित गया। पुन: मैं इस नगर में आ गई। पुन: उसी पुस्तकालय के लिए ढलती संध्या के समय चल पड़ी। पुस्तक मिलन का उत्साह मेरी चाल में स्वत: प्रकट हो रहा था। मैं सीधे ही वहाँ पहुँच गई।

मैं ठीक उस भवन के पास आकर अटक गई। वहाँ पर पुस्तकालय के स्थान पर 'वस्त्र'

'तैयार वस्त्रों का अद्यतन शो रूम' लिखा हुआ था।

कहीं मैं किसी मिथ्या स्थान पर तो नहीं आ गई?

नहीं तो? यही भवन था। इसी स्थान पर पुस्तकालय था।

तो यहाँ ये लिखे हुए शब्द क्या कर रहे हैं? तू अवश्य ही भटक गई हो।

मैंने आस पास के परिवेश का निरीक्षण किया।

नहीं, मुझे पूर्ण विश्वास है कि इसी भवन में पुस्तकालय था।

तो अब क्यों नहीं है?

मैं क्या जानूँ? मैं तो यहाँ डेढ़ महीने के अंतराल के पश्चात आई हूँ।

तो?

डेढ महिना किसी नगर को बदल जाने के लिए पर्याप्त होता है।

किन्तु...

किन्तु मैं इसका रहस्य जान कर ही रहूँगी।

मैंने नगर के अनेक लोगों से पूछा कि यहाँ एक पुस्तकालय था वह कहाँ गया? सभी का एक सा उत्तर था कि यहाँ कभी कोई पुस्तकालय था ही नहीं।

ऐसा कैसे हो सकता है? मैंने अपनी इन आँखों से उसे देखा था। मैंने उससे मित्रता भी की थी। वह ग्रंथपाल युवक भी वहीं था। कितना मोहक स्मित करता था वह! कितनी सारी पुस्तकें थीं? कितना अद्भुत था वह? किन्तु, कहाँ गया वह सब?

ऐसे अनेक अनुत्तरित प्रश्नों का भार लेकर मैं उस भवन के चबूतरे पर बैठ गई। मैं निराश हो गई। अंत में हारकर होटल लौटने के लिए मैं चबूतरे से उठी तभी मेरे प्रत्यक्ष वह प्रकट हो गया। मुझे भीतर ले आया। अपनी डायरी देकर चला गया।

डायरी?

वह अभी भी मेरे हाथों में थी। पंखे की हवा से उड़कर वह चिट मेरे पग में उलझ गई। मैं पुन: उसे पढ़ गई। मैं रुक गई। कुर्सी पर बैठ गई। डायरी पढ़ने लगी।

8 ऑगस्ट

अनहद आनंद की अनुभूति हो रही है मुझे। इस आनंद को शब्दों में लिखकर उसे खंडित करने का मन नहीं है। बस इतना ही लिखना है कि आज मेरा एक स्वप्न पूर्ण हो गया। इस नगर को मैंने एक पुस्तकालय समर्पित कर दिया। इस प्रसंग पर पधारे असंख्य लोगों को देख मेरा मन नृत्य कर रहा है, गीत गा रहा है।

***

मैं शीघ्रता से कुछ पृष्ठों को पलट गई। जिस दिनांक को मैं इस नगर में प्रथम बार आई थी उस दिनांक पर रुक गई।

5 सितंबर

पुस्तकालय प्रारंभ किए हुए एक महिना होने को आया है। किन्तु लोग यहाँ तक आते नहीं है। उद्घाटन के दिन आए लोग भी कहाँ खो गए? वे सब पुस्तकों के लिए आए थे या?

लोगों को पुस्तकों तक लाने के लिए मुझे कुछ विशेष करना होगा। हो सकता है पुस्तकों को उनके पास ले जाना पड़े।

7 सितंबर

आज से मैं लोगों के पास जाने लगा, पुस्तकें लेकर। यह मेरा एक प्रयास है लोगों को पुस्तकों से, पुस्तकालय से जोड़ने का। किन्तु लोगों का प्रतिसाद उत्साह जनक नहीं है। मुझे अधिक प्रयास करना होगा।

30 सितंबर

अनेक घरों में, बस्तियों में जा जाकर पुस्तकालय के लिए लोगों को जागृत करने का प्रयास करते करते थक गया हूँ।

2 अक्टूबर।

आज शास्त्री जी का जन्मदिन। मैं आज पीछे की बस्ती में गया। एक घर के बंद द्वार को खटखटाकर प्रतीक्षा करने लगा। दो ही क्षण में एक स्त्री और दो बालक दौड़ आए। स्त्री पूरी कंगाल थी और बालक निस्तेज।

मेरे हाथ में रही पुस्तक उसे देने ही जा रहा था किन्तु अचानक मैं रुक गया। बढ़ा हुआ मेरा हाथ हवा में ही रह गया। उनकी आँखों में भूख की क्षुधा थी। कुछ भोजन की अपेक्षा थी। किन्तु मेरे हाथ में थी निर्जीव पुस्तक।

मैं उनकी आँखों को देखता ही रह गया। जैसे वे आँखें मुझे कह रही हो कि -

पुस्तक से ज्ञान प्राप्त करने की मन की भूख जागने से पहले तन में रहे पेट को भूख लगती है।

इस घटना ने मुझे विचलित कर दिया। पुस्तक लिए बढ़ा हुआ हाथ मैंने वापिस खींच लिया। पुस्तक को झोली में डालकर झोली में रहे मेरे टिफिन को उस घर के आँगन में छोड़ दिया। मैं भाग आया, उनकी भूख मिटाने का भ्रम लेकर।

किन्तु, एक दिन की या एक समय की भूख मिटाने से क्या होगा? पेट को तो रोज भूख लगती है, दिन में दो बार। कभी दो से भी अधिक बार।

भूख.. भूख.. पेट की भूख। मन की भूख से पहले जागती तन की भूख!

पेट की भूख के सामने मेरा मन हार गया। पुस्तकालय में रही पुस्तकें जैसे एक एक कर जलने लगी। उसकी आग चूल्हे की आग बन गई, जिसमें पक रहा था कोई भोजन। किसी के पेट की अग्नि शांत हुई होगी। जली हुई पुस्तकों की राख में मेरा स्वप्न भी राख हो गया। मैं जागता रहा पूरी रात्रि। आंख के सामने जल रहे मेरे स्वप्न को देखता रहा।

6 अक्टूबर

चार दिनों से मैं सो नहीं पा रहा हूँ। मन में अनेक युद्ध चल रहे हैं। ये सब पुस्तकें व्यर्थ हैं। कुछ काम की नहीं हैं। ये पेट की भूख मिटा नहीं सकतीं। मुझे घृणा है इन पुस्तकों से।

जला दो इन पुस्तकों को।

समुद्र में बहा दो इन पुस्तकों को।

मिटा दो इन पुस्तकों को।

7 अक्टूबर

प्रभात के साढ़े तीन बज रहे हैं। मैं विचलित हूँ, क्षुब्ध हूँ। निंद्रा मुझे परास्त नहीं कर सकी। मैं शैय्या त्याग देता हूँ। गवाक्ष से बाहर देख रहा हूँ।

सब शांत है। कहीं भी कुछ भी नहीं हो रहा है। सारा नगर सो रहा है, सिवा मेरे। घर का द्वार खोलकर मैं निकल पड़ता हूँ निंद्राधीन नगर की शांत वीथियों में। मेरे मन की शांति की खोज में।

पो फटने के समय मैं किसी उद्यान में बैठा हूँ और पुष्पों पर बरसी ऑस को सूरज की किरणें सोख ले उससे पूर्व मैं उसे मेरी हथेलियों से स्पर्श करने लगता हूँ। हथेली में स्थित मेरी हस्तरेखाएं भीगने लगी है। मेरे अशांत मन को वह स्पर्श शांत कर रहा है। मैं शांत हो रहा हूँ। उगते सूरज को देखकर मैं एक निर्णय करता हूँ। इस पुस्तकालय की यहाँ अब कोई आवश्यकता नहीं रही। मैं उसे बंद कर दूंगा। वहाँ तैयार वस्त्रों का भव्य शो रूम बनाऊँगा। उसके पीछे ही एक

फेक्टरी लगा दूंगा जिसमें कारीगर काम करेंगे। वस्त्र बनाएंगे। अपनी और अपनों के पेट की अग्नि को शांत करेंगे।
दूर क्षितिज पर धीरे धीरे प्रकाश के चरण पड रहे हैं। पंखी कलरव करने लगे हैं। सूरज उदय हो चुका है।

9 अक्टूबर
मेरी योजना अनुसार काम प्रारंभ हो गया है। सब उचित समय पर प्रारंभ हुआ है, उचित समय पर पूर्ण हो जाएगा। शीघ्र ही भव्य शो रूम चालू हो जाएगा।

19 अक्टूबर.
सभी तैयारियां हो गई हैं। कारीगर काम करने लगे हैं। वस्त्र बनने लगे हैं। शो रूम की सजावट भी द्रुत गति से हो रही है। पुस्तकें भवन के पीछे किसी अज्ञात खंड में तमस के साथ बसने लगी हैं। मैं एक एक कर सभी आयोजन पूरा कर रहा हूँ।
मैं निर्णय कर लेता हूँ कि -
23 अक्टूबर को संध्या आठ बजे शो रूम का उद्घाटन करेगा लोकप्रिय अभिनेता विवेक।

23 अक्टूबर
प्रभात के आठ बज चुके हैं किन्तु मुझे प्रतीक्षा है संध्या के आठ बजने की।

***

23 अक्टूबर?
मैंने अपनी हाथ की घड़ी में देखा। आज ही तो है 23 अक्टूबर। संध्या के आठ बजने में अभी समय है। मैंने डायरी के पृष्ठों को पलटा। आगे के सभी पृष्ठ कोरे थे। मैंने डायरी बंद कर दी। आँख बंद करके सोचने लगी। पढ़ी हुई डायरी के शब्दों में मेरे प्रश्नों के उत्तर खोजने लगी। अचानक मेरी आँख पर तीव्र प्रकाश पड़ने लगा। केमरे के फटाफट क्लिक की ध्वनि मेरे कानों पर पड़ने लगी। मैंने आँखें खोल दी।
अनेक रंगों के प्रकाश से मेरी आँखें बंद होने लगी। अनेक व्यक्ति के मध्य में मैं घिर गई थी। किन्तु मैं उनके मुखों को नहीं देख पाई। सभी मेरी तस्वीरें ले रहे थे।
मैं दुविधा में पड गई। उस भीड़ में मैं उसे ढूँढने लगी।
अपनी आदत अनुसार वह मेरे सम्मुख अचानक प्रकट हो गया। उसके हाथ में दिया और दियासलाई थे। वह मुझे द्वार तक ले गया। मैं उसे प्रश्न भरी दृष्टि से देखने लगी। उसने मेरे हाथों से एक दीप प्रज्ज्वलित करा दिया। तालियों की ध्वनि से सारा खंड भर गया।

इस क्षण के प्रभाव से अभी मैं मुक्त भी नहीं हुई थी कि वह सब को पीछे के भाग में ले गया। अज्ञात खंड के सभी बंद द्वार उसने खोल डाले। तमस में बंदी पुस्तकें मुक्त हो गई। असंख्य पुस्तकें मेरे प्रत्यक्ष थीं। मेरे सभी प्रश्नों के उत्तर देते हुए वे मेरा स्वागत कर रही थीं।
मेरी आँखों में नैसर्गिक स्मित खेलने लगा, उसके गालों पर ऑस की बूंदें।

--- सम्पन्न ---

[8] तादात्म्य

“कितनी भीड़ है? कितना कोलाहल है! लोग इतना कोलाहल क्यों करते हैं?” उसने स्वयं से प्रश्न कर दिया।

उसने देखा कि सूर्यास्त के समय पर समुद्र के तट पर मनुष्यों की भीड़ है।

“इस कोलाहल में न तो समुद्र की हवा की ध्वनि और न ही समुद्र की तरंगों का स्वर सुनाई देता है।” वह चारों तरफ समुद्र को और तट को देखने लगा।

“सिंग ले लो, सिंग। गरम गरम सिंग ले लो।” एक सिंगवाला उसके समीप आकर पूछने लगा, “सिंग खाओगे श्रीमान?”

वह मन ही मन सोचता है ‘इतना कोलाहल पर्याप्त न था की यह सिंगवाले की ध्वनि?’

उसने रूखे मन से कहा, “दे दो। किन्तु एक प्रश्न पूछूँ?”

“पूछिए जी। सब प्रश्नों के उत्तर रखता है यह सिंगवाल।”

“अरे वाह। तब तो आप यहाँ वर्षों से आते रहते होंगे?”

“तब मैं सात वर्ष का था। मेरे पिताजी के साथ आया था। तब से आता हूँ यहाँ।”

“तब तो लगभग तीस से अभी अधिक वर्षों से आप यहाँ से परिचय रखते हो।”

“आप इतना सटीक आकलन कैसे कर लेते हैं?”

“इस तट पर आते लोग तब भी इतना कोलाहल करते थे?”

“आपने मेरे प्रश्न का उत्तर नहीं दिया।”

“कुछ नहीं। कभी कभी तुक्के भी काम कर जाते हैं।”

“तब तो तुक्के भी अच्छे लगा लेते हो।” दोनों हंस पड़े।

“अब आप मेरे प्रश्न का उत्तर दीजिए।”

“नहीं जी। उस समय इतनी भीड़ कहाँ होती थी? पिताजी साढ़े तीन किलो सिंग लेकर आते थे। कभी पूरी बिकती ही नहीं थी। थोड़ी कुछ बच ही जाती थी।”

“और अब आप कितनी लेकर आते हो?”

“आठ किलो। घर लौटने से पूर्व ही पूरी बिक जाती है।”

“दो प्रश्न पूछूँ?”

“और दो प्रश्न? पूछिए श्रीमान। आज वर्षों बाद किसी ने मुझ से इतनी बातें की है। जीतने प्रश्न पूछने हो, पूछिए।”

“पिताजी के साढ़े तीन किलो और आपके आठ? ऐसा क्यों? कभी इससे अधिक लाने की मनसा नहीं हुई?”

“परिवार का पेट भर जाता है। और क्या चाहिए?”

उत्तर सुनकर वह कुछ विचार करते हुए बोलने की चेष्टा कर रहा था तभी सिंगवाला बोला।

“संतुष्ट हूँ। अधिक की लालसा नहीं है। और कुछ पूछना है तो पूछिए?”

“हाँ। किन्तु पहले यह पैसे लो और सिंग बांध दो। साथ साथ उत्तर भी देते रहना।” पैसे लेकर वह सिंग बांधने लगा।

“इतनी भीड़ और इतने कोलाहल से दूर कोई ऐसा स्थान बता दो जहां जाकर मैं शांत चित्त से सूर्यास्त को देख सकूँ। कोई ऐसा स्थान जहां अस्त होते सूर्य और मेरे मध्य कोई व्यवधान न हो। कोई ध्वनि न हो। जहां केवल सूर्य, समुद्र की तरंगें, उसकी ध्वनि, यह मधुर पवन, शांति और मैं। क्या है ऐसा स्थान कोई इस समुद्र तट पर?”

सिंगवाल सारे तट पर दृष्टि घुमाकर उसकी तरफ मुड़ा।

“श्रीमान, है न ऐसा स्थान। मैं दिखाता हूँ। वहाँ दूर देखो।” दूर कोने की तरफ संकेत करते हुए आगे बोला, “वह एक काला पत्थर दिख रहा है?”

वह ऊस दिशा में घूमा, “वो वाला पत्थर?”

“हाँ जी। उसे समुद्री खड़क कहते हैं श्रीमान।“’ वह हंस पड़ा।

“उस पर बैठकर आप अस्त होते हुए सूर्य को देखोगे तब सूर्य होगा और आप ही होंगे। वहाँ न कोई जाता है न कोई उसे देखता भी है। आपका और प्रकृति का तादात्म्य हो जाएगा।”

“क्या हो जाएगा? पुन: एक बार कहो।”

“तादात्म्य हो जाएगा, श्रीमान।”

“यह शब्द कहाँ से सीखा? और इतनी शुद्ध हिन्दी?”

“आप जैसे ही किसी व्यक्ति की संगति का प्रभाव है। अब आप विलंब न करें। उस खड़क तक जाइए। अस्त होने के समय सूर्य की गति तीव्र हो जाती है। जाइए श्रीमान।”

वह चलने लगा।

“श्रीमान, यह सिंग तो लेते जाइए।” उसने सिंग दे दी।

“और एक बात श्रीमान।”

“क्या?”

“आज तक किसी ने मुझे ‘आप’ कहकर संबोधित नहीं किया है। आपका धन्यवाद, श्रीमान।”
वह हंस पडा, “मुझे भी आज तक किसी ने ‘श्रीमान’ कहकर संबोधित नहीं किया। इसलिए आपका भी धन्यवाद।”
“तो आपको क्या कहते हैं लोग?”
“कभी मिस्टर, तो कभी जेन्टलमेन।” वे दोनों हंस पड़े।
वह चल पड़ा उस पत्थर की तरफ। जैसे जैसे वह उस पत्थर के समीप जाता गया, भीड़ का कोलाहल मंद होता गया। समुद्र तरंगों की ध्वनि बढ़ती गई। पत्थर के समीप जाकर वह सूर्यास्त की दिशा में देखने लगा।
‘हाँ, यह स्थान ठीक है। यहाँ से सूर्यास्त देखने में कोई व्यवधान नहीं होगा। यहाँ कोलाहल भी मंद हो गया है। नहीं, नहीं। मंद नहीं किन्तु वह कोलाहल समुद्र तरंगों की ध्वनि में ही समाहित हो गया है। सूर्यास्त दर्शन के लिए इससे अधिक उपयुक्त स्थान कदाचित कोई नहीं होगा। सिंगवाला स्थानों को भली भांति जानता है। मैं यहीं बैठ जाता हूँ।’
वह खड़क पर बैठते बैठते रुक गया।
‘यहाँ थोड़ा पानी है। जूते निकाल लेता हूँ। पानी का स्पर्श पैरों को रोमांचित कर देगा।’ उसने जूते निकाल लिए, मोजे भी। पत्थर पर पग रखते ही एक चीख के साथ उसने पग खींच लिया।
‘यह पत्थर तो नुकीला है। पीड़ा देता है यह पत्थर। कहीं अन्यत्र चलना होगा।’
किसी अन्य स्थान के लिए उसने दृष्टि दौड़ाई।
‘अन्य कोई स्थान दिख नहीं रहा है। यहीं ठीक रहेगा। जूते पहन लेता हूँ। तब तो पीड़ा नहीं होगी न?’
जूते लेने के लिए वह झुका। क्षणभर वैसे ही झुका रहा।
‘नहीं। भले थोड़ी पीड़ा हो किन्तु जब पैरों को पानी का स्पर्श होगा तो पीड़ा को भूल जाऊंगा।’
वह नंगे पैर पत्थर पर बैठ गया।
‘आहा.. हा। समुद्र का स्पर्श कितना शीतल है! ऊपर से यह पवन, समुद्र की ध्वनि, रंग बदलता गगन, और अस्त होता सूर्य। कितना अनूपम दृश्य है यह! अब मैं मौन हो जाता हूँ। केवल क्षणों को सुनता हूँ।’
वह मौन हो गया। समुद्र की ध्वनि का स्वर, मंद मंद पवन का स्वर वह सुनने लगा।
तभी एक युवती सुंदर रूप से धारण की हुई सादी साडी में सज्ज उसके समीप आकर बोली,
“यहाँ तो कोई बैठा है। आज कौन यहाँ आ गया?”
वह उसकी तरफ मुड़ी, “क्या आप कहीं अन्यत्र बैठ सकते हैं?”

उसने उसे देखा भी नहीं और उत्तर भी नहीं दिया। बस, सूर्यास्त देखता रहा।
“यह पत्थर मेरा है। मैं यहीं बैठती हूँ। डूबते सूरज को यहीं से देखती हूँ।
कब से?
यही पूछ रहे हो न? मैं जानती हूँ, तुम्हारे मन ने यही प्रश्न किया है। मैं ठीक कह रही हूँ न? मैं कब से यहाँ बैठती हूँ यह तो मुझे भी ठीक ठीक स्मरण नहीं है। कदाचित कल से, कदाचित महीने भर से, कदाचित वर्षों से या कदाचित अनंत काल से। तुम यह सब जानकार क्या करोगे? मैं कहती हूँ न कि मैं यहीं बैठती हूँ, यह पत्थर मेरा है। बस इतना पर्याप्त है। मैं आज भी सूर्यास्त का दर्शन यहीं से ही करूंगी। आप कहीं चले जाइए।”
उसने कोई प्रतिक्रिया नहीं दी।
“चलिए, उठिए।” वह न तो उठा न ही उसने उस युवती को देखा।
“ऐसे क्या सुन रहे हो? चलो उठो।” उसने उस स्थान से उठने के कोई संकेत नहीं दिए।
“चलो अब, विलंब न करो। अभी सूरज डूब जाएगा। जब सूरज डूब जाए, अवनी पर तमस उतर आए तब मैं चली जाऊँगी। तब आप यहाँ बैठ जाना। कल के सूर्यास्त से पूर्व तक आप बैठ सकते हैं। किन्तु अभी तो चलो।”
युवती को देखे बिना ही वह थोड़ा पीछे हट गया। पत्थर पर थोड़ा स्थान रिक्त हो गया। उसने संकेतों से उस युवती को वहीं बैठने के लिए कहा।
“तो आप उठने वाले नहीं हो? ठीक है। अभी सूर्यास्त हो जाएगा। इसलिए आप से चर्चा में लग गई तो विलंब हो जाएगा। आज तो मैं इसी थोड़ी सी जगह पर बैठ जाती हूँ, कल यह सब नहीं चलेगा।” युवती उस रिक्त स्थान पर उसके समीप ही बैठ गई।
“मैंने जो कहा वह स्मरण रखना। कल मुझे यह स्थान खाली चाहिए।”
उसने क्षणभर उसे देखा और सूर्यास्त देखने लगी। कुछ ही क्षणों में सूर्यास्त हो गया।
“लो सूर्यास्त भी हो गया।”
“तुम बोलती अधिक हो।”
“और तुम देखने के स्थान पर सुनते अधिक हो।”
“क्या?”
“तुम मुझे सुन रहे थे या सूर्यास्त देख रहे थे? तुम्हारा ध्यान मेरे शब्दों पर था, भले ही दृष्टि सूर्य की तरफ थी।”
“तो तुम भी सूर्य के स्थान पर मुझे देख रही थी? तब तो तुमने भी सूर्यास्त के क्षण व्यर्थ नष्ट कर दिए।”

“तो तुम स्वीकार करते हो कि तुमने इन क्षणों को नष्ट कर दिया?”
“तुम भी स्वीकार कर लो। इसमें आपत्ति ही क्या है?”
“मुझे कोई आपत्ति नहीं है। न ही इससे मुझे कोई अंतर पड़ेगा। किन्तु तुम्हें अवश्य पड़ेगा।”
“मुझे कैसे?”
“मैं तो प्रतिदिन इसे देखती रहती हु। हाँ, आज छूट गया।”
“कब से देखती रहती हो?”
“कब से? आ गया न वही प्रश्न? मुझे उस तिथि का यथार्थ ज्ञान नहीं है किन्तु इससे भी मुझे कोई अंतर नहीं पड़ेगा। तुम तो आज प्रथम बार ही इस घटना को देखने आए थे। तुम्हारे लिए तो यह व्यर्थ ही हो गया न?”
“तुम यह कैसे जानती हो?”
“मैं व्यक्ति को देखकर सब कुछ जान लेती हूँ।”
वह सहसा युवती को देखने के लिए उसकी तरफ मुड़ा किन्तु तमस प्रकट हो गया था जिसके कारण वह उसे देख नहीं पाया। वह चौंका।
“तुम कौन हो?”
“मैं कौन हूँ?” वह हंसने लगी।
“यदि मैं मेरा नाम बता दूँ तो मेरे विषय में तुम कितना जान सकोगे?”
“मैं नहीं जानता।”
“मेरा व्यवहार ही मेरा परिचय है। क्या इतना पर्याप्त नहीं है?”
“वह तो देख ही लिया है।”
“अभी तो देखा ही क्या है? आगे आगे देखो, देखते रहना।” उसने उसे देखने का प्रयास किया किन्तु इस बार तमस और अधिक गहरा चुका था। वह उसे देख नहीं पाया।
“आज तो तुम्हारा सूर्यास्त छूट गया तो क्या हुआ? कल सूर्योदय देख लेना। हाँ, सूर्योदय देखने के लिए यह पत्थर काम नहीं आएगा। यहाँ से सूर्यास्त देखना ठीक है किन्तु यहाँ से सूर्योदय नहीं दिखेगा।” वह पत्थर पर से उठ गई। थोड़ा चलकर रुक गई।
“यहाँ से दाहिने हाथ पर थोड़ा चलना। सूरज वहाँ से निकलता है। तुम वहाँ जाकर सूर्योदय देख लेना। सूर्योदय में कोई व्यवधान नहीं होगा, न कोई भीड़ होगी न कोई कोलाहल होगा। सूर्योदय का पूरा पूरा आनंद ले लेना।”
“उस समय भीड़ नहीं होगी, कोलाहल नहीं होगा, क्यों?”
“कुछ भी नहीं होगा।”

“ऐसा क्यों?”

“डूबते सूरज में ही सब रुचि रखते हैं, उगते सूर्य में कोई नहीं।”

“क्या तुम्हें उगते सूर्य में रुचि है?”

“दोनों सूर्य में मेरी रुचि है।”

“तो तुम प्रतिदिन सूर्योदय भी देखती हो?”

“किन्तु कल मैं नहीं आऊँगी।”

“क्यों नहीं आओगी?”

“कल तुम जो आनेवाले हो।”

“तो क्या हुआ?”

“बहुत कुछ हो जाएगा, श्रीमान।”

“जैसे?”

“मैं आऊँगी तो तुम्हारे निकट बैठूँगी। मैं मेरी बातें बोलती रहूँगी। तुम दृष्टि तो सूर्य पर रखोगे किन्तु कान मेरी बातों पर रखोगे। मेरी बक बक सुनते रहोगे। इससे तुम्हारा ध्यान सूर्य पर न होकर मेरे पर केंद्रित रहेगा। तुम विचलित हो जाओगे और इतने में सूर्योदय हो जाएगा। तुम्हारा सूर्योदय भी आज के सूर्यास्त की भांति नष्ट हो जाएगा। आज का दोष तो मेरे माथे पर लग गया, कल का दोष मैं नहीं उठा सकती।”

“तब तो मेरे कारण तुम्हारा सूर्योदय छूट जाएगा। यह पाप तो मैं भी अपने माथे पर नहीं ले सकता। मैं नहीं आनेवाला कल सूर्योदय दर्शन के लिए। तुम अपना नित्य क्रम भंग न करना।”

“नहीं, नहीं। कल तो तुम्हें ही आना है। मैं नहीं आऊँगी। यह निर्णय हो गया।”

“मैंने यह निर्णय स्वीकार नहीं किया है। मेरे लिए तुम अपने नित्यक्रम को नहीं तोड़ोगी।”

“मेरी तथा मेरे नित्यक्रम की आप चिंता न करें।”

“क्यों न करूँ?”

“इतने सारे सूर्योदय देख लिए हैं तो …।”

“इतने सारे?”

“बहोत सारे।”

“बहोत सारे अर्थात कितने?”

“ऐसी बातों की गिनती नहीं करनी चाहिए। छोडो इन बातों को। यह निर्णय रहा कि कल तुम सूर्योदय दर्शन करोगे। अकेले ही। बिना भीड़ के। बिना व्यवधान के। बिना कोलाहल के। और हाँ, बिना मेरी बक बक सुने।”

“क्या यह तुम्हारा आदेश है? मैं नहीं माननेवाला किसी अज्ञात युवती के आदेश को।”
“यह मेरा आदेश नहीं, तुम्हारी नियति है। नियति को कौन टाल सकता है?”
“यदि यह नियति है तो मिथ्या है।”
“नियति कभी मिथ्या नहीं हो सकती।”
“मैं कभी भी सूर्योदय से पूर्व जागा ही नहीं। सूर्योदय के समय भी नहीं। तो सूर्योदय से पूर्व जागकर यहाँ आना और सूर्योदय देखना मेरी नियति नहीं हो सकती। तुम्हें कोई भ्रम तो नहीं हो गया?”
“मुझे कभी कोई भ्रम नहीं होता। मैं नियति को भली भांति जानती हूँ। मैं उसे देख लेती हूँ, पढ़ लेती हूँ। किन्तु प्राय: मैं किसी को बताती नहीं हूँ।”
“तो मुझे क्यों बताए जा रही हो?”
“यह भी तो नियति ही है।”
“मैं नहीं मानता ऐसी नियति को जिसे यह भी ज्ञात नहीं है कि सूर्योदय से पूर्व जागना मेरा चरित्र ही नहीं है।”
“नियति सब के चरित्र को बड़ी गहनता से जानती है। वही सब के चरित्र का निर्माण करती है। कोई नहीं जानता कि नियति कब किसे कौन से चरित्र में ढाल दे।”
“जो भी हो, मैं सूर्योदय से पूर्व जागनेवाला नहीं हूँ।”
“जागते तो वह हैं जो सो जाते हैं। जिन्हें निंद्रा नहीं आती वह जागेगा भी कैसे?”
“क्या अर्थ है इन बातों का?”
“सूर्योदय से पूर्व क्यों नहीं जागते? भय लगता है?”
“भय? किससे?”
“अंधकार से।”
“कैसा अंधकार?”
“जिस मार्ग पर हम कभी नहीं चले वह मार्ग हमें अज्ञात लगता है, अंधा लगता गई। हम मान लेते हैं कि उस मार्ग पर प्रकाश नहीं है। तमस की वह धारणा हमें भयभीत कर देती है। किन्तु एक बार उस मार्ग तक जाना चाहिए। उसे देखना चाहिए। वहाँ भी प्राणी रहते हैं, मनुष्य रहते हैं। वे भी तो जीवन जीते हैं। वहाँ जीवन भी होता है, प्रकाश भी। वहाँ भी लक्ष्य होते हैं।
बिना वहाँ गए, बिना उसे देखे भय और अंधकार नहीं मिटता। सभी डूबते सूरज को देखने आते हैं, किन्तु कोई सूर्योदय का दर्शन करने नहीं आते। जानते हो क्यों?”
उसने नकार के भाव मुख पर प्रकट कर दिए।

“सूर्यास्त से पूर्व प्रकाश होता है। इस प्रकाश में मनुष्य स्वयं को सुरक्षित मान लेता है और निर्भय होकर चला आता है इस तट पर। किन्तु...।” वह रुक गई। दूर क्षितिज में व्याप्त तमस की तरफ देखने लगी। कुछ क्षण वह स्थिर मुद्रा में मौन हो गई।

“किन्तु क्या? रुक क्यों गई?”

युवती ने एक गहन सांस ली, “वहाँ देखो। वह तमस दिख रहा है?”

“तमस ही दिख रहा है। तमस में कुछ है क्या?”

“जब तमस होता है तो उसमें कुछ भी हो क्या अंतर पड़ता है? कुछ भी नहीं दिखेगा उस तमस में। तुम्हें तो देखना है केवल तमस।”

वह उसकी बात समझ नहीं सका। मौन होकर उसे देखने की व्यर्थ चेष्टा करता रहा।

“प्रत्येक सूर्यास्त के पश्चात तमस उतर आता है।

गहन तमस। प्रालंब तमस।

उस तमस को मिटाने के लिए दूसरे दिन के सूर्योदत की प्रतीक्षा करनी पड़ती है। तथापि मनुष्यों को सूर्यास्त ही पसंद आता है। सूर्यास्त स्थायी तमस लेकर आता है। ज्योति से तमस की स्थिति।

सूर्योदय स्वयं प्रकाश लेकर आता है। स्थायी प्रकाश। तमसो मा ज्योतिर्गमय !

किन्तु किसी को सूर्योदय का दर्शन नहीं करना। कैसी विचित्रता में जी रहा है मनुष्य?”

“तुम्हारी बात सत्य है किन्तु सूर्योदय मेरे लिए अज्ञात मार्ग है।”

“कभी तो अज्ञात पगदंडी पर चलने का साहस करो। कभी तो जाने पहचाने मार्ग को भूलने का प्रयास करो। पर्वत पर से नदी जब निकलती है तो वह अज्ञात पथ पर चल पड़ती है। तुम भी कभी तो पहाड़ से नदी की भांति निकलो। परिणाम क्या होगा? मार्ग भूल जाओगे, यही न? किन्तु कहीं तो अवश्य पहुँचोगे। मार्ग भूल जाने का सामर्थ्य है?”

“मैं नदी नहीं हूँ।”

“बंद तालाब भी नहीं रहे हो अब।”

“अर्थात?”

“निवृत जो हो चुके हो।”

“मेरे विषय में तुम सब कुछ कैसे जानती हो?”

“वह सब छोड़ो। जाओ, अभी। कल लौटकर समय पर आना है तुम्हें। कल का सूर्योदय तुम्हारे स्वागत को उत्सुक है“” कहती हुई युवती तमस में कहीं विलीन हो गई। वह उस तमस को देखता रहा।

#*#

शर्वरी अपने यौवन पर थी। अपने शयन कक्ष में वह सोने का यत्न करता रहा किन्तु निद्रा देवी उससे रूठी थी। वह टहलता रहा। किन्तु उसका उद्विग्न मन शांत नहीं हो रहा था। उसने वातायन खोल दिया। हवा के साथ तमस के कुछ पंखी भी कक्ष में घुस गए।

‘कितना गहन तमस है? सारा संसार सो चुका है, नीरव शांति है। किन्तु मेरी आँखों में निद्रा क्यों नहीं आती? क्या मैं जागना चाहता हूँ?’

‘नहीं, तुम तो सोना ही चाहते हो किन्तु तुम्हें संशय है कि एक बार सो गया तो नींद इतनी लंबी ना हो   जाए कि सूर्योदय से पूर्व जाग ही न सको।’

‘सूर्योदय से पहले जागना ही नहीं है मुझे।’

‘सूर्योदय देखने से पूर्व तुम सो भी नहीं सकोगे।’

‘क्यों ऐसी असंभव बातें कर रहे हो?’

‘असंभव क्यों?’

‘रात्रि भर जागने का मेरा चरित्र नहीं है। तुम जानते हो। तो मैं सूर्योदय क्यों देखूँ?’

‘सूर्योदय के नाम पर उस युवती से पुन: मिलन की अपेक्षा है तुम्हें।’

‘उससे? कैसी कैसी बातें करती रहती है वह? कितनी बक बक भी करती है। कल वह नहीं आए तो ही अच्छा।’

“क्या अच्छा होगा?’

‘सूर्योदय दर्शन में व्यवधान तो नहीं बनेगी।’

‘तो तुम सूर्योदय दर्शन करने जा रहे हो? या कुछ और दर्शन की अभिलाषा है?’

‘और क्या?’

‘संध्या के तमस में तो तुम उसे देख नहीं पाए, प्रभात के प्रकाश में उसका दर्शन हो ही जाएगा।’

‘चुप हो जाओ। चलो भागों यहाँ से। मुझे सोना है।’

उसने अपनी ही परछाई को डांट दिया। वह अदृश्य हो गई।

#*#

सूर्योदय से पूर्व ही वह उसी तट के पूर्वी छोर पर आ गया। सब कुछ शांत था, निर्जन था। समुद्र की तरंगें एक मधुर संगीत का सर्जन कर रही थी। उसे सुनकर वह आंदोलित हो गया। पूर्व दिशा को देखता हुआ वह तट पर चलने लगा।

‘कुछ ही क्षणों में सूर्योदय होगा। तमस का अंत होगा।

प्रकाश से पूर्व का तमस!
मंद मंद प्रकाश से मिश्रित तमस!
इस तमस में कोई तो आकर्षण है जो मुझे अपनी तरफ आकृष्ट कर रहा है।
न पूर्ण प्रकाश, न पूर्ण तमस।
हे तमस, हे शर्वरी।
अब तक कहाँ थे आप? वैसे तो हमारा यह प्रथम मिलन है किन्तु प्रतीत होता है कि मैं तुमसे और तुम मुझसे अनंत काल से परिचय रखते हैं।
अनंत काल से?'
चलते चलते वह रुक गया। एक गहन श्वास लिया। उसके भीतर किसी अज्ञात गंध ने प्रवेश कर लिया।
'यह गंध? कैसी है यह गंध? गंध है या सुगंध? सुगंध ही प्रतित हो रही है। किसी पुष्प की सुगंध है यह। मैं इसे अपने भीतर तक उतार लेता हूँ।'
उसने पुन: गहन सांस ली और सुगंध को अपने भीतर, गहन- अत्यंत गहन तक भर ली।
'पुष्प की सुगंध के साथ कोई और सुगंध भी आ रही है।
दूसरी सुगंध? किसकी है यह दूसरी सुगंध? भीनी भीनी धरती की सुगंध जैसी लग रही है किन्तु अभी न तो वर्षा हुई है न अवनी तप्त है। तो कैसी है यह सुगंध?'
उसने चारों तरफ देखा। जैसे सुगंध के उद्गम बिन्दु को खोज रहा हो। क्षणभर वह वहीं रुक गया। विचार करने लगा। उसने एक बार पुन: उस सुगंध को अपने भीतर खींच लिया।
'ओह। यह तो समुद्र की तरफ से आ रही है।
समुद्र!
हाँ, यह सुगंध समुद्र की ही हो सकती है।'
अनायास ही वह नीचे झुका। भीगी रेत को अपनी मुट्ठी में भर लिया। उस रेत को सूंघने लगा।
'ओह भीगी रेत!'
बंद मुट्ठी में स्थित रेत को देखने लगा। उसे भीगी रेत में कुछ दिखाई दिया।
'इस रेत में यह प्रतिबिंब कैसा? यह प्रकाश कैसा? अरे, यह तो चंद्र का प्रतिबिंब है। और यह धवल चाँदनी? इस रेत पर बिखरी चंद्र किरणों पर मेरा ध्यान गया ही नहीं!'
उसने गगन को देखा। पश्चिम आकाश में अस्त होता हुआ चंद्र उसने देखा।
'सूर्योदय दर्शन से पूर्व चंद्रास्त?'
वह अनिमेष चंद्र को देखता रहा।

‘यह तो सूर्यास्त से भी सुंदर है, अनुपम है।’
दूर कहीं समुद्र से आती नाविक के गीत की ध्वनि ने उसकी एकाग्रता भंग की।
‘क्या नाविक इतनी शीघ्रता से जाग जाते हैं? समुद्र में नैया लेकर निकल पड़ते हैं?’
दूर एक नैया दिखी। उसने गीत पर ध्यान दिया।
“ओ सागर, ओ सागर!
भीतर तेरे कितने मोती, कोई ना जाने।
उस आँख की मोती को, तु भी कहाँ जाने?
ओ सागर, ओ सागर!”
सागर तट पर किसी वृक्ष पर से अभी अभी जागे पक्षी के पंख की ध्वनि उत्पन्न हुई। उसे सुनकर दूसरे, तीसरे और अनेक पक्षी के पंख से ध्वनि होने लगी।
उसका ध्यान उस ध्वनि की तरफ गया। उस वृक्ष की लताएं भी सोकर उठी नायिका की अंगड़ाई की भांति चलित हो गई। उस अंगड़ाई ने एक अज्ञात स्वर उत्पन्न कर दिया।
वह उस स्वर को सुनकर बोला, “नाविक का गीत सुनकर यह भी जाग गए?
आहा हा। कितनी मनमोहक ध्वनि है ये सब?”
सभी पंखी जाग गए। कलरव करने लगे। कोई कोयल, कोई पपीहा, कोई मेना, कोई चिड़िया!
उसने पंखियों को देखा, “तुम सब तो गाने भी लगे? तुम्हारी ध्वनि भी मधुर है। जैसे कोई संगीत। जैसे किसी ऋषि के मुख से निकली वेद की ऋचाएं!”
पूर्व में सूर्य ने अपने आगमन का संकेत दे दिया। वह धीरे धीरे अपना रूप प्रकट करने लगा। तमस अपना सामान समेटने लगा। दिशाओं का आकाश अनेक रंगों को ओढ़ने लगा। जैसे कोई तरुणी नए नए वस्त्र ओढ़ रही हो! सब कुछ रंगीन हो गया।
उसने गगन के एक बिंदु तरफ निर्देश किया।
“यही, यही वह बिन्दु है जहां से अभी सूर्य निकल आएगा। तमस पूर्ण रूप से विलीन हो जाएगा।”
क्षण में ही सूर्य निकल आया। उसे देखते ही वह चंचल हो गया, उत्तेजित हो गया। मुख से विचित्र ध्वनि करता वह चीखने लगा। उसमें न तो कोई शब्द थे न उसका कोई अर्थ था। वह बस चीखता रहा, पागलों की भांति। और देखता रहा सूर्य को अनिमेष, अपलक!
सूर्य पूर्ण रूप से प्रकट हो गया तो उसने अपनी दृष्टि सूर्य से हटा ली। तभी उसके कान में एक नूतन स्वर गूंजने लगा। उसने अपना ध्यान उस स्वर पर केंद्रित किया। कुछ क्षण उसे सुनते

रहने पर वह बोल पड़ा, “यह तो भ्रमर का गुंजारव है। निश्चय ही कोई पुष्प निकट ही होगा जिसके पाश से मुक्त हुआ भ्रमर मुक्ति गीत गा रहा होगा।

कहाँ होगा वह पुष्प? मुझे उसे देखना है। किन्तु इतने विशाल समुद्र तट पर कहाँ होगा वह?”

उसने विचार करते हुए एक गहन श्वास लेकर उस सुगंध को अपने भीतर समेट लिया।

“सुगंध!

पुष्प की यह सुगंध ही मुझे पुष्प तक ले जाएगी। मुझे इसकी डोर पकड़कर चलना होगा।”

सुगंध के पथ पर वह पुष्प खोजने के लिए चलने लगा। दूर कहीं एक कोने में उसे एक रंग दिखा। वह वहाँ दौड़ गया।

“तो यह है वह पुष्प!”

पुष्प को स्पर्श करने के लिए वह नीचे झुका। उसका हाथ भीग गया।

“ऑस के बिन्दु हैं ये।

पुष्प पर ऑस की बूंदें? लगता है रात भर भ्रमर रोया होगा। अपने अश्रुओं को वह यहीं छोड़ गया है।”

वह पुन: झुका। पुष्प को स्पर्श किया। उसके भीतर एक अनाम प्रवाह बह गया।

“हे पुष्प! भ्रमर के इन अश्रुओं को मैं पोंछ देता हूँ।”

वह उसे पोंछने के लिए आगे बढ़ा ही था तभी उसे एक आकाशवाणी सुनाई दी, “रुक जाओ। उसे मत पोंछो।”

पुष्प की तरफ बढ़ा हुआ हाथ वहीं स्थिर हो गया। वह उस ध्वनि की दिशा में देखने लगा।

“कौन? कौन है यहाँ?”

“इतनी शीघ्रता से तुम मेरा विस्मरण कर दोगे ऐसा मेरा अनुमान नहीं था। अभी कल संध्या तो हम मिले थे।”

“ओह। तो यह आकाशवाणी तुम्हारी है? प्रकट हो जाओ। आवरण हटाकर आ जाओ।”

“अभी नहीं। अभी तो तुम पुष्प को स्पर्श नहीं करना। भ्रमर के आंसुओं को वहीं रहने दो।”

“क्यों?”

“ये अश्रु ही पुष्पों की शोभा है। भ्रमर से पुनर्मिलन की आश है। उसे नष्ट मत करना।”

“ऐसा है क्या? यह तो अद्भुत है!”

“आज तुमने इतने सारे आश्चर्य देखे किन्तु अब जाकर यह उद्गार तुम्हारे कंठ से निकला।”

“कौन सा उद्गार?”

“अद्भुत शब्द का उद्गार।”

“अद्भुत! अद्भुत! इन आश्चर्यों से परिचय करवाने का श्रेय तुम्हें जाता है।”

“इसका अर्थ है कि...।” वह विशेष आशय से रुक गई।

“क्या अर्थ है? शीघ्र कहो।” वह अधीर हो गया। युवती ने उसके धैर्य की परीक्षा लेते हुए थोड़ा समय लिया। वह व्याकुल हो गया। तभी वह बोली।

“ध्यान से सुनो। इसका अर्थ है कि तुम अब अपने उचित स्थान पर आ चुके हो।”

“उचित स्थान? कौन सा स्थान? कहाँ है वह स्थान?”

“कल संध्या जिस पत्थर पर तुम बैठे थे वह स्थान नहीं है तुम्हारा। इस समय तुम जिस स्थान पर बैठे हो वही तुम्हारा उचित स्थान है। उदय ही तुम्हारा उचित स्थान है, अस्त नहीं।”

“मुझे मेरा उचित स्थान बतलानेवाली, यहाँ तक लेकर आने वाली तुम अपना रूप प्रकट करो। अब तो अपना परिचय दो। अपना नाम बताओ। आ जाओ, प्रकट हो जाओ। मैं तुम्हारा आह्वान करता हूँ।”

अपने स्थान पर उसने अपने अट्टहास को प्रकट किया। वह अधिक व्याकुल हो गया।

“प्रकट हो जाओ, प्रकट हो जाओ।”

युवती का अट्टहास धीरे धीरे मंद होने लगा। अंत में शांत हो गया। वह उस ध्वनि को चारों दिशाओं में खोजने लगा। वह कहीं नहीं था।

दूर किसी मंदिर की मंगला आरती का शंखनाद हुआ। पश्चात घंटनाद गुजने लगा। वह उसे सुनता रहा, प्रभात की कोमल वेला में।

सम्पन्न

एक पहेली : **सखी सहेली**

[हिन्दी वार्ता संग्रह]

- व्रजेश दवे